व्यक्तित्व निर्माण में शास्त्रीय संगीत की भूमिका

महेश कुमार भारतीय

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

–00–

आत्म-निवेदन

व्यक्तित्व के सर्वांगीण निर्माण में शास्त्रीय संगीत की महत्वपूर्ण भूमिका है। यदि व्यक्तित्व ही निकृष्ट या विखण्डित स्तर का हुआ तो जीवन में अनेकानेक विकृतियों, असफलताओं का सामना करना पड़ेगा। सारी उपलब्धियों एवं बौद्धिक प्रगति के बावजूद आज जिस तरह मनुष्य अपने आपको व्यथित, असुरक्षित, उद्विग्न एवं असफल महसूस कर रहा है, उसके मूल में उसके व्यक्तित्व का विखण्डन ही दृष्टिगोचर होता है। उच्चशिक्षा, चतुरता या शरीर सौष्ठव भर से कोई व्यक्ति न तो आत्म-सन्तोष प्राप्त कर सकता है न लोक सम्मान, वहां मात्र शास्त्रीय संगीत ही 'डूबते को तिनके का सहारा' कहावत को सिद्ध करता है।

संगीत का विद्यार्थी होने के नाते संगीत के विभिन्न पहलुओं पर गहनतम शोध और बारीकियों को जानने की इच्छा सदैव मानस में थी जो निरंतर पल्लवित और पुष्पित होती रही और मेरे इस स्वप्न को मूर्त्त रूप देने में I.C.C.R. का महत्वपूर्ण योगदान रहा। मैं I.C.C.R. का हार्दिक आभार ज्ञापित करता हूं जिन्होंने मुझे इस शोध कार्य हेतु योग्य पात्र समझा।

मेरे शोध का प्रत्यक्ष व साकार रूप आपके सम्मुख है जो निश्चित रूप से मेरे माता-पिता, गुरूजनों के आशीर्वाद, स्नेह एवं मार्गदर्शन के बिना असंभव ही था जिसके लिए मैं आजीवन उनका ऋणी हूं। साथ ही अपने मित्रों के सहयोग व प्रेरणा के लिये भी उनके प्रति आभारी हूं जिसके फलस्वरूप मैं अपने इस लक्ष्य को प्राप्त कर सका। श्री नीरज पाठक, श्री सुधेन्धु ओझा तथा श्रीमती दुर्गा पाण्डे जी का भी मैं ह्रदय से आभारी हूँ जिन्होंने अपनी व्यस्तताओं के बावजूद मेरे कार्य को गति प्रदान की।

निहित शोध ग्रंथ में मैंने समस्त बिन्दुओं को स्पष्टतया छूने का प्रयास किया है। यदि मेरे इस शोध से संगीत के विद्यार्थियों व सर्वसाधारण को किंचित मात्र भी लाभ पहुंचे तो मैं इसे अपनी संगीत यात्रा की दिशा में भगवत प्रसाद मानूंगा। चूंकि यह मेरा प्रथम प्रयास है अतः इस शोध के जो कुछ भी सारगर्भित पराग–कण हैं वह सब आपके और जो त्रुटियां हैं वह मेरी। मुझे सदैव आप सभी गुणीजनों के आशीर्वाद, मार्गदर्शन व प्रेरणा की अपेक्षा रहेगी।

– महेश कुमार भारतीय

अध्याय : एक

व्यक्तित्व निर्माण में शास्त्रीय संगीत की भूमिका

1. व्यक्तित्व की परिभाषा : व्यक्ति एवं व्यक्तित्व

प्रारम्भ में मनुष्य एक अबोध शिशु के रूप में पृथ्वी पर जन्म लेता है तब न तो उसमें अपना भला–बुरा सोचने की क्षमता होती है और न अपने गुण, कर्म, स्वभाव को परिष्कृत करने की शक्ति। अच्छे बुरे की परिभाषा से वह कोसों दूर रहता है। उस समय उसे जो कुछ भी सिखाया जाता है वह उसी के अनुरूप ही आगे बढ़ता रहता है। यही एक सही समय होता है अभिभावकों के लिए कि वह अपना उत्तरदायित्व समझ कर बच्चे के व्यक्तित्व की आधारशिला रखें।

व्यक्तित्व क्या है ? व्यक्तित्व की परिभाषा क्या है ?

व्यक्ति के विविध क्रियाकलाप जिस ऊर्जा से संचालित होते हैं, उसका स्रोत निज का व्यक्तित्व है। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी अद्वितीयता भी है इसकी संरचना एवम् गठन के सम्बन्ध में विभिन्न मनीषियों एवम् विचारकों के अनेकों मत हैं।

मनोवैज्ञानिक 'गार्डन वाकर आलपोर्ट' ने अपने अध्ययन 'पर्सनाल्टी ए साइकोलॉजिकल इण्टरप्रिटेशन' में इस तथ्य की स्वीकारोक्ति भी की है। उनके अनुसार व्यक्ति सिर्फ समाज की इकाई भर नहीं है। वह स्वयं अपने में पूर्ण भी है एवम् उसकी अपनी मान्यता भी है। यही कारण है कि औसत के रूप में व्यक्तियों के व्यक्तित्व को नहीं समझा जा सकता।

मार्टनप्रिंस अपनी कृति 'द अन्कांशस' में इसे व्यक्ति की समस्त जैविक, जन्मजात विन्यास, उद्वेग, रुझान एवं मूल प्रवृत्तियों का समूह मानते हैं।

मनोवैज्ञानिक सिगमण्ड फ्रायड का 'द एनॉटॉमी ऑफ मेण्टल पर्सनैलिटी' में कहना है कि मानवीय व्यक्तित्व ईडइगो, एवम् सुपर इगो का समुच्चय है। उन्होंने अपने इस कथन को समझाते हुए बताया है कि ईड मानसिक ऊर्जा का स्टोर हाउस है। इसमें बिखराव है। वे इगो को इसी के एक विशेष भाग के रूप में स्वीकारते हैं।

व्यक्तित्व के यूँ तो कई पहलू हैं किंतु कुछ अध्येताओं ने व्यक्तित्व की व्याख्या 'पर्सनैलिटी' के आधार पर की है जिसका अर्थ है "मुखौटा"। मुखौटे का मतलब है जो बाहर से दिखाई दे। भारत के प्राचीन ऋषि कहे जाने वाले वैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व की संरचना का सांगोपांग अध्ययन किया था उनके अनुसार इसका केन्द्रीय आयाम 'आत्मा' है। इसी के गुण और दिव्यता हमारे व्यवहार और चिन्तन में दिखाई पड़ते हैं।

किसी व्यक्ति के रंग–रूप की सुन्दरता, कपड़ों की सज–धज, घुंघराले केश या साज–सज्जा से उसके व्यक्तित्व को जांचा परखा नहीं जा सकता है।

व्यक्तित्व से तात्पर्य शालीनता से है, व्यक्ति के सद्गुणों, उसके उत्तम स्वभाव, वाणी, शैली, कर्म इत्यादि का इस पर सम्यक प्रभाव पड़ता है। मनुष्य की चारित्रिक विशेषताएं ही व्यक्ति के व्यक्तित्व को निखारती हैं और निखरा हुआ व्यक्तित्व ही आकर्षक प्रतीत होता है। प्राचीन भारतीय नाट्य शास्त्र में स्त्री–पुरुष पात्रों की संरचना में मनीषियों ने नायक–नायिकाओं को उनके व्यक्तित्व के आधार पर ही कई वर्गों में बांटा था।

कहा गया है कि मानव मूलतः एक जानवर है – सामाजिक जानवर। अन्य प्राणियों से उसकी अलग पहचान सिर्फ इसलिए है कि वह सोच सकता है, उसमें रचनाशीलता व संवेदनशीलता है तथा अपने कठिन परिश्रम के बूते पर वह सामाजिक जीवन को अधिकाधिक सुविधाजनक बनाने की कोशिश करता है, आधुनिक मानव के प्रगति की कहानियां इसलिए ही चलती आ रही हैं। इन बृहत्तर लक्ष्यों ने निःसंदेह मानव के जीवन को जटिल बना दिया है और एक न समाप्त होने वाले प्रतियोगिता भाव ने हमारे जीवन के लालित्य को विस्थापित कर दिया है। किंतु क्या व्यक्ति बंगला, गाड़ी, रुपया और भौतिक सुख–सुविधाओं के बाद भी अपने आपको संतुष्ट पाता है ? क्या उसको आत्मसुख की प्राप्ति होती है ? आत्म सुख की प्राप्ति के लिए मानव अपने आपको साहित्य, संगीत व कला से जोड़ने का प्रयास करता है तदुपरांत प्रारम्भ होती है व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया।

व्यक्ति समाज को सज्जित करता है और संगीत व्यक्ति को व्यक्ति का व्यक्तित्व अर्थात् जीव की आत्मा – व्यक्तित्व ही व्यक्ति को अन्य प्राणियों से अलग करता है – या यूँ कहें कि जिस मानव में साहित्य, संगीत, कला के प्रति रूचि का अभाव हो वह कुछ भी हो सकता है पर मानव नहीं। भर्तृहरि का एक श्लोक ही इसे स्पष्ट कर देने के लिए बहुत है :

"साहित्य संगीत कला विहीन,
साक्षात् पशुः पुच्छ विषाणहीनः।"

संगीत और व्यक्तित्व का इतरेतराश्रय सम्बन्ध है। संगीत से व्यक्तित्व का निर्माण होता है और व्यक्तित्व से संगीत में सफलता मिलती है। सर्वप्रथम हमें यह विचार करना है कि संगीत के द्वारा मानव व्यक्तित्व का निर्माण किस प्रकार होता है। तदनन्तर इस बात पर प्रकाश डालना है कि

व्यक्तित्व से संगीत पर क्या प्रभाव पड़ता है। परस्पराक्षेपी पदार्थों का यह सार्वभौमिक नियम है कि वह एक दूसरे पर पूर्णतया आधारित होते हैं।

संगीत क्या है ?

संगीत और व्यक्ति में परस्पर क्या संबंध है, संगीत की उत्पत्ति कैसे हुई, वैदिक संगीत कैसा था, पुराणों में संगीत, रामायण काल, उपनिषदों, महाभारत काल में संगीत की क्या दशा थी? इन सभी पर हमें थोड़ा प्रकाश डालना प्रासंगिक होगा।

संगीत शब्द का अर्थ है 'सम्यग् रूपेण गीयते इति संगीतम्' अर्थात जो सभी प्रकार से गाया जाये उसे संगीत कहते हैं। संगीत वह ललित कला है जिसमें स्वर, लय, ताल के माध्यम से संगीतज्ञ अपने मनोगत भावों को व्यक्त करता है। संगीत का क्षेत्र अत्यंत व्यापक एवं विस्तृत हैं। इसका सम्बन्ध मानव–जीवन से है या यूँ कहें कि संगीत मानव जीवन की अभिव्यक्ति है। संगीत में मानव जीवन का साक्षात् दर्शन होता है। वीर, रौद्र, करुण, शृंगार, भयानक, अद्भुत, हास्य तथा शांत आदि जितने भी रस हैं उन सबकी अभिव्यक्ति संगीत के माध्यम से ही संभव होती है।

संगीत में भाव पक्ष और कला पक्ष दोनों का समन्वय मिलता है। कला पक्ष में कला और भाव पक्ष में जीवन का बिम्ब परिलक्षित होता है। भाव पक्ष एवं कला पक्ष से आनन्द की सृष्टि होती है जो मानव जीवन की परम निधि है।

संगीत का आधार नाद को बताया है। नाद अत्यंत सूक्ष्म और व्यापक है, प्रकृति के कण–कण में इसकी सत्ता पाई जाती है इसलिए संगीत भी

अत्यंत सूक्ष्म तथा प्रभावशाली है तथा यह ही ब्रह्मानंद की अनुभूति कराने में सर्वथा सक्षम है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के आधार पर संगीत के दो रूप पाए जाते हैं – मार्गी संगीत तथा देशी संगीत। मार्गी संगीत का उद्देश्य संगीत द्वारा ईश्वर की प्राप्ति करना है यह संगीत गंधर्व लोक में व्यवहृत होता है, मार्गी संगीत अत्यंत प्राचीन तथा कठोर सांस्कृतिक व धार्मिक नियमों से जकड़ा हुआ था, अतः आगे उसका प्रचार ही समाप्त हो गया। मार्गी शब्द का अर्थ है अन्वेषण करना अर्थात् संगीत के माध्यम से उस परम तत्व ब्रह्म का साक्षात्कार करना।

देशी संगीत मनोरंजन का साधन माना गया है। भिन्न–भिन्न देशों के मनुष्य आनन्द, वियोग, उद्वेग, दुःख में अपने मनोभावों को जिस संगीतमय रूप में व्यक्त करते हैं और जिसे गा–बजाकर प्रसन्नता प्राप्त करते हैं वह देशी संगीत कहलाता है। इसका उद्देश्य है मनोरंजन करना। कहते हैं कि मार्गी संगीत ईश्वरोपासना का माध्यम है किंतु यदि देशी संगीत को भी हम ईश्वरोपासना का माध्यम मानकर उसकी साधना करें तो निःसंदेह देशी संगीत से भी हम ब्रह्मानन्द की रसानुभूति प्राप्त कर सकते हैं। सूर, तुलसी, जयदेव, विद्यापति, मीरा और कबीर आदि भक्तों ने ईश्वरोपासना का साधन संगीत को ही बनाया था। भारत में देशी संगीत आज के समय में दो भागों में विभक्त हो गया है। पहला कर्नाटकीय और दूसरा उत्तर भारतीय संगीत के नाम से प्रसिद्ध है।

संगीत एक सहज भाषा, माध्यम, विधा, उपादान और समाधान के रूप में सर्वव्यापी है। संगीत का अपना शास्त्र है, अपना विज्ञान है, अपना मनोविज्ञान है, संगीत समाजशास्त्रीय अध्ययन है, संगीत लोकाचार है।

एक विश्व भाषा के रूप में संगीत बंधनों को तोड़ता है राष्ट्रीयता, धर्म, जाति, रूप–रंग व लिंग के आधार पर बनी खाइयों को पाटने का काम संगीत ही करता है।

संगीत का जन्म (उत्पत्ति)

व्यावहारिक जगत में देखा जाता है कि मनुष्य बाल्यावस्था में, जब भाषा के माध्यम से अपने मनोभावों को अभिव्यक्त नहीं कर पाता, तब वह रोकर या हँसकर अपने सुख दु:ख को अभिव्यक्त करता है, तात्पर्य यह है कि भाषा सीखने से पूर्व मानव की अभिव्यक्ति का माध्यम ध्वनि होती है।

ध्वनियाँ कई प्रकार की होती हैं। कोयल की कुहू–कुहू, बरसात की रिमझिम, नदियों की कल–कल, चिड़ियों की चहचहाहट, झरने की झर–झर, झिंगुर की झिन–झिन और आँधी की हरर–हरर, विभिन्न पशु–पक्षियों की आवाजें मनुष्य आदि काल से सुनता आया है। इनमें से कौन–कौन सी ध्वनियाँ संगीत के लिए उपयोगी हैं इसमें भी मनुष्य ने अंतर करना सीखा। मनुष्य ने जब प्रकृति की ध्वनियों में छिपे संगीत के गुण को पहचाना होगा तो उन्हें लय में बाँधने का प्रयास भी किया होगा। संगीत उपयोगी ध्वनि एक निश्चित लय पैदा करती है और वही संगीत उपयोगी ध्वनि होती है।

संगीत की उत्पत्ति कब और कैसे हुई, इस संबंध में आज भी अनेक मत–मतान्तर हैं और संगीत के जन्म को लेकर कई रोचक कथाएं भी प्रचलित हैं। कहा जाता है कि चारों वेदों की रचना करने वाले ब्रह्मा ने ही संगीत को भी जन्म दिया यह वैदिक युग था जिसमें चारों वेदों की रचना हुई थी। सामवेद में ब्रह्मा ने संगीत के विषय में विस्तार से बताया है। कहा जाता है उन्हांने यह विद्या शिव को सिखाई और शिव ने देवी सरस्वती को

संगीत के संस्कार दिए। संगीत में पारंगत होने के बाद ही सरस्वती वीणा पाणि कहलाई। इसीलिये सरस्वती के चित्रों में उन्हें हाथों में वीणा के साथ दिखाया जाता है।

प्रचलित कथाओं में देवराज इन्द्र की संगीत–नृत्य सभा का भी उल्लेख मिलता है। इन्द्र की सभा में गायक, नर्तक और वादक सभी हुआ करते थे, गंधर्व गाते थे और अप्सराएं नृत्य किया करती थीं और किन्नर वाद्य बजाते थे। भारतीय संगीत में गायन, वादन और नृत्य, इन तीनों कलाओं के मेल को ही वस्तुतः संगीत कहते हैं। संगीत रत्नाकर नाम के ग्रंथ में संगीत के विषय में यही कहा गया है।

"गीतं वाद्यं तथा नृत्तं त्रयं संगीतमुच्यते।"

संगीत शब्द गीत शब्द में सम् जोड़कर बना है। सम् का अर्थ है सहित और गीत यानी गान। नृत्य और वादन के साथ किया गया गान संगीत है।

यद्यपि संगीत की उत्पत्ति के सम्बन्ध में आज अनेकों मत–मतान्तर प्रचलित हैं किंतु इस सम्बन्ध में दो विचारधाराओं का प्रभाव प्रमुख रूप से दिखाई देता है। पहला है आस्तिक विचारधारा और दूसरा विकासवादी विचारधारा। आस्तिक विचारधारा को भारतीय विचारधारा भी कहा गया है।

भारतीय विचारधारा का मानना है कि संगीत की उत्पत्ति 'प्रणव' (ओंकार) से हुई है। प्रणव नादात्मक ब्रह्म है। सृष्टि के आदि में पितामह ब्रह्म के निःश्वास रूप वेदों का ज्ञान प्रणव से ही प्राप्त हुआ। साम मंत्रों का स्वर युक्त ज्ञान भी पितामह को ब्रह्म (परमात्मा) से ही प्राप्त हुआ और ऋषियों ने सामस्वरों को गांधर्व की दृष्टि से षडजादि सप्त स्वरों के नाम से प्रचारित किया। इन्हीं सप्त स्वरों का प्रयोग कालांतर से गान–वाद्य की विविध विधाओं में किया गया। स्वरों के नाम, रंग, वर्ण, छंद, ऋषि, देवता

सभी कुछ वैदिक संगीत में समाया हुआ है, वैदिक संगीत का अन्वेषण कर ऋषियों ने गांधर्व का निर्माण किया। गांधर्व के नियमों में परिवर्तन कर 'देशी' संगीत कालक्रमानुसार रंजन पक्ष की प्रधानता को लेकर प्रचलित हुआ।

भारतीय परम्परा, ज्ञान–इतिहास, सृष्टि का रचयिता ईश्वर को स्वीकार करते हैं। इस मान्यता की पुष्टि करने वाले विशाल साहित्य आज भी विद्यमान हैं।

विकासवादी विचारधारा

आदिमानव ज्ञानहीन, अविकसित बुद्धि का था और इसे सभ्य बनने में हजारों वर्ष लग गए आदिम काल में उसके पास आपस में सम्प्रेषण के लिए कोई भाषा नहीं थी इसलिये इशारों में वह अपनी बात व्यक्त करता था। बहुत समय बाद पशुओं की आवाज से, दो वस्तुओं के टकराने से जो ध्वनि उत्पन्न होती थी उसे सुनकर, बादल की गड़गड़ाहट झरनों की झर–झर से प्रभावित होकर वह अपने मुंह से विभिन्न प्रकार की आवाजें निकालने लगा। बाद में धीरे–धीरे भाषा का विकास हुआ। अकस्मात् भावावेश में उसके मुंह से आवाज निकली और उस आवाज़ को सुनकर बार–बार आश्चर्यचकित होकर वह विभिन्न प्रकार की आवाजें निकालने की चेष्टा करने लगा। धीरे–धीरे इसी प्रयास से सांगीतिक स्वरों का विकास हुआ। सांगीतिक स्वरों के माध्यम से वह आकर्षित होता गया और क्रमशः दो, तीन, चार स्वरों की संगति से गीत के प्रारंभिक रूप का विकास हुआ।

विकासवादी सिद्धांत के प्रणेता डार्विन ने 'मानव अवतरण' में बताया है कि अनेक वैज्ञानिक निरीक्षणों के आधार पर यह सिद्ध हुआ है कि

पशु–पक्षियों की ध्वनि में भी स्वरों के भिन्न–भिन्न अंतराल पाए जाते हैं, घोड़ा, मेंढक, हाथी, कोयल, कुत्ते, चूहे सभी के अंदर एक–एक स्वर विद्यमान होता है। कुत्ते पालतू होने के बाद चार या पांच स्वरों में स्पष्ट भौंकने लगते हैं। घरेलू मुर्गे कम से कम एक दर्जन स्वरों में स्पष्ट बोलते पाए जाते हैं।

वैज्ञानिकों के मतानुसार पक्षियों में संगीत का उपयोग विशेष रूप से निराशा, भय, क्रोध, विजय या केवल आनन्द भाव प्रकट करने में होता है। निष्कर्ष यह है कि संगीत का विकास पशु पक्षियों से लेकर मानव तक विभिन्न भावों की अभिव्यक्ति के लिए विभिन्न आवाज़ों के प्रयोग के रूप में दिखाई देता है।

विकासवादी मतानुसार संगीत का प्रारंभिक इतिहास यही है कि यदि मनुष्य की उत्पत्ति आज से एक करोड़ वर्ष पूर्व हुई तो संगीत की उत्पत्ति को भी हम एक करोड़ वर्ष के कुछ बाद तो मान ही सकते हैं।

संगीत उत्पत्ति पर विद्वानों के अनेकों मत हैं जिनमें से कुछ का उल्लेख इस प्रकार है :

> भरत के नाट्य शास्त्र के अनुसार चारों वेदों के आधार पर संगीत का निर्माण ब्रह्मा जी ने किया, ब्रह्मा ने यह कला शिव को दी और शिव के द्वारा यह कला सरस्वती को प्राप्त हुई। सरस्वती जी से नारद को संगीत कला का ज्ञान प्राप्त हुआ – नारद ने स्वर्ग के गंधर्व, किन्नर तथा अप्सराओं को संगीत शिक्षा दी। वहां से भरत, नारद और हनुमान आदि ऋषि संगीत कला में पारंगत होकर भू–लोक (पृथ्वी) पर संगीत कला के प्रचारार्थ अवतरित हुए।

- एक फारसी विद्वान का कथन है कि पहाड़ों पर 'मूसीकार' नाम का एक पक्षी होता है, जिसकी चोंच में बाँसुरी की भांति सात सुराख होते हैं, उन्हीं सात सुराखों से सात स्वर ईजाद हुए।

- अरब के इतिहासकार 'ओलासीनिज्म' के अनुसार मनुष्य को संगीत बुलबुल से मिला। मानव जब पेड़ के नीचे विश्राम कर रहा था तब उसे चिड़ियों का मधुर स्वर सुनने को मिला उसके बाद मनुष्य ने स्वयं उसे अपने कंठ से निकालने का प्रयत्न किया, तत्पश्चात् इससे संगीत की उत्पत्ति हुई।

- पाश्चात्य विद्वान फ्रायड के मतानुसार, संगीत की उत्पत्ति एक शिशु के समान, मनोविज्ञान के आधार पर हुई है। जिस प्रकार बालक रोना, चिल्लाना, हँसना आदि आवश्यकतानुसार स्वयं सीख जाता है, उसी प्रकार संगीत का प्रादुर्भाव भी मनोविज्ञान के आधार पर स्वयं हुआ है।

इस प्रकार संगीत की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न मत पाए जाते हैं इनमें कौन सा मत ठीक है यह कहना कठिन है।

निष्कर्ष यही है कि संगीत एक ऐसा विषय है जो सभी को अपनी ओर आकर्षित करता है और उस आकर्षण से प्रभावित होकर मनुष्य उस पर विचार करने के लिए बाध्य हो जाता है।

प्राचीन ग्रन्थों में संगीत के चार मुख्य मत पाए जाते हैं – (1) शिव–मत या सोमेश्वर मत, (2) कृष्ण मत या कल्लिनाथ–मत, (3) भरत मत और (4) हनुमन्मत।

वैदिक युग में संगीत

वैदिक काल 2000 ई०पू० से 1000 ई०पू० तक माना गया है। इसी युग में वेदों की रचना हुई थी। ऋग्वेद में एक जगह ज़िक्र आता है कि आर्यो के आमोद–प्रमोद का मुख्य साधन संगीत था। कई प्रकार के वाद्यों का आविष्कार ऋग्वेद के समय में ही हुआ। यजुर्वेद में संगीत कई लोगों के लिए रोजी–रोटी का साधन बना और सामवेद को भारतीय संगीत का मूल ही माना गया है। यह वेद उपासनात्मक है। बृहद्देवता के अनुसार – "सामानि यो वेत्ति स वेद तत्त्वम्।" गीता में भगवान श्री कृष्ण ने स्वयं सामवेद को अपना ही स्वरूप बतलाया "वेदानां सामवेदोऽस्मि।"

वैदिक काल में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र नामक वर्ग स्थापित हो गए थे। ब्राह्मण ही अन्य तीन वर्गो को विद्या तथा संगीत का ज्ञान प्रदान करते थे। स्त्रियों द्वारा इस युग में वीणा बजाना एक विशेषता थी। यह वह युग था जब समाज संगीतज्ञों को बहुत आदर की दृष्टि से देखता था। वैदिक युग के कलाकारों का चरित्र बड़ा ही उज्ज्वल और उच्चकोटि का था। तब कलाकार किसी प्रलोभन में नहीं फंसते थे और कला की साधना व तपस्या बड़े ही संयम से किया करते थे।

वैदिक काल में नृत्य का कार्यक्रम भी बहुत उल्लास से होता था, यह नृत्य खुले प्रांगण में एकत्रित जनता के सम्मुख होता था इसमें नर–नारी दोनों ही भाग लेते थे। समूह नृत्य भी इस युग में बहुत ही प्रचलित था। इस काल में उत्तम गायक, उत्तम वादक और उत्कृष्ट प्रबंधकार भी हुआ करते थे। इस काल में स्त्रियां उन्हीं पुरुषों से अनुराग करती थीं जो संगीत कला में दक्ष हों। अवश्मेघ यज्ञों में मनोरंजन के निमित्त गाथा–गान तथा वीणादि वाद्यों का वादन किया जाता था।

इस काल में सामवेद ग्रंथ था, जो गान–प्रधान है। इसमें मंत्र और स्तोभ यज्ञों में देवताओं की स्तुति करते हुए गाए जाते थे। स्तोभों का विशेष नाम 'सामन' था। इसी से इसका नाम सामवेद पड़ा। सामवेद में उच्चारण की दृष्टि से 3 प्रकार के स्वर और संगीत की दृष्टि से 7 प्रकार के स्वरों का उल्लेख मिलता है। सामनों को गाने वाले 'ऋत्विक्' या 'सामग' कहलाते थे। 'नारदीय शिक्षा' नामक ग्रंथ में कहा गया है कि साम–गान करने वाले हाथों की उंगलियों से और हाथों को दायें–बायें ले जाकर विभिन्न स्वरों का संकेत किया करते थे।

आर्यों ने संगीत में पवित्रता लाने के लिए इसे धर्म के आवरण में लपेट दिया था। फलस्वरूप संगीत और धर्म के एकीकरण होने से संगीत पवित्रतम बन गया और नैतिकता के उच्च स्तर पर पहुंचा, किंतु आगे चलकर जब यह धर्म से भी हटा तभी उसने मानवता को नैतिकता से गिराना प्रारंभ कर दिया। आर्यों ने देवताओं को प्रसन्न करने का साधन मात्र संगीत को ही माना वह संगीतमय स्तुति एवं प्रार्थना से ही देवताओं को प्रसन्न किया करते थे।

सामगान में ही संगीत की तीनों विधाओं गीत, वाद्य और नृत्य की स्थापना तथा महत्व का उल्लेख मिलता है। वैदिक युग में ही वाद्यों के तत्, सुषिर, अवनद्ध व घन चारों प्रकारों का उल्लेख प्रामाणिक रूप में मिलता है।

इस काल में गान में 'सामगान' सर्वश्रेष्ठ था, सामगान में प्रयुक्त स्वरों को ही षड्जादि नाम से गांधर्व में प्रयोग किया गया। सामगान, विशिष्ट विधान से किया गया समूह गान ही है। जिसका गांधर्व व गान में भिन्न–भिन्न कुतुप व वृंदगान के रूप में विस्तार हुआ।

संगीतशास्त्रों में भारतीय संगीत का मूल 'सामगान' को ही माना है। सामगान में प्रयुक्त स्वरों व धुनों की मधुरता से आकर्षित होकर मनुष्यों ने

सांगीतिक गीतों व धुनों का निर्माण किया। मनुष्य का व्यक्तित्व इस युग में बहुत आकर्षक था क्योंकि सभी व्यक्तियों के मन बहुत साफ व सच्चे थे, प्रवृत्ति सात्विक थी। संगीत से निरंतर उनका व्यक्तित्व भी निखरता रहा। संगीत से जब देवता भी प्रसन्न होते हैं तब इस गान (संगीत) से मनुष्य भी अपने मनोरंजन के साथ-साथ अपने चित्त को एकाग्र करने में सक्षम क्यों नहीं हो सकता ?

रामायण काल में संगीत और कलाकार

महर्षि वाल्मीकि कृत 'रामायण महाकाव्य' काव्य माना जाता है, यह 'गेय' रचना है। रामायण काल को उत्तर वैदिक काल माना जाता है। इस काल के लव और कुश बहुत कुशल गायक थे। एक बार लव और कुश ने विभिन्न विषयों के विशेषज्ञों के समक्ष गान करके प्रशंसा प्राप्त की और रामायण गान के उपलक्ष्य में दिये गए अठारह हजार स्वर्ण मुद्राओं को न लेकर लव-कुश ने अपने निर्लोभता व त्याग का परिचय दिया। इससे यह ज्ञात होता है कि उस समय का कलाकार अपने गुरू का सम्मान और आत्मतुष्टि हेतु अपने गुरूओं के मान सम्मान हेतु सब कुछ न्यौछावर करने के लिए सदैव तैयार रहता था। महर्षि वाल्मीकि अनेक विद्याओं में पारंगत-दूरदर्शी विशेषज्ञ थे। ऐसे योग्य गुरू के निर्देशन में शिक्षा प्राप्त कर कुश-लव दोनों भाइयों ने अनेक विद्याओं के साथ गांधर्व के विशिष्ट नियमों में बद्ध होकर स्वर, श्रुति, ग्राम, मूर्च्छना, जाति, ताल, लय, वादन की विशिष्ट क्रियाओं - करजादि धातुओं, कंठ साधनानुकूल सूक्ष्म विधाओं, गायकों के गुण सीखे और इससे ही वह उच्च कोटि के व्यक्ति बन गये थे। संगीत आत्मानुशासन की कठिन डगर है जो व्यक्ति नियम से संगीत शिक्षा ग्रहण करता है उसका व्यक्तित्व उतना ही उच्च कोटि का होता जाता है।

रामायण में महाराजा दशरथ और श्रीराम की नगरी अयोध्या, वानर राज सुग्रीव की राजधानी किष्किंधा और रावण की राजधानी लंका इन तीनों प्रमुख नगरों में सांगीतिक वातावरण का मनोहारी वर्णन प्राप्त होता है, जिससे इन नगरों के नागरिकों की संगीत के प्रति रूचि का परिचय मिलता है।

अयोध्यापुरी में संगीतजीवी वर्ग के अतिरिक्त पत्नियों, बहुओं और बेटियों में भी गीत, वाद्य, नृत्य और अभिनय की साधना प्रचलित थी। पुरुष भी कला साधक व रसिक थे। पुरुष ही स्त्रियों को संगीत के प्रति प्रेरित करते थे और उनके साथ मिलकर कार्यक्रम प्रस्तुत करते थे। इससे उस नगरी के व्यक्तियों और राजा की कलात्मक मर्मज्ञता का पता चलता है।

श्रीराम गांधर्व विद्या में पारंगत थे। वह संगीत, वाद्य और नृत्य के विशेषज्ञ थे और श्रीराम के सद्‌गुणों का वर्णन अयोध्याकांड के प्रथम सर्ग में किया गया है।

वाल्मीकि जी लिखते हैं कि स्वयंवर के समय श्रीराम के द्वारा शिव–धनुष तोड़े जाने पर आकाश में देवताओं की दुन्दुभि बज उठी। जब सीताजी ने श्रीरामजी को जयमाला पहनाई उस समय भी संगीत का आयोजन किया गया था। सखियां मंगल गीत गाने लगीं और मंगल–गान के साथ ही स्वयंवर सम्पन्न हुआ। रामायण काल में कई वाद्य यंत्र प्रचलित थे जैसे भेरी, दुन्दुभि, मृदंग, वीणा, घट आदि। इन उल्लेखों से अयोध्या नगरी के सांगीतिक वातावरण का पर्याप्त परिचय मिलता है।

तत्कालीन दूसरी प्रसिद्ध नगरी सुग्रीव की किष्किंधापुरी थी। जब लक्ष्मण जी ने इस नगरी में प्रवेश किया तो वहां उन्हें वीणा के मधुर सुर व शुद्ध गायन को सुना। जो किष्किंधापुरी के सांगीतिक वातावरण का परिचायक है।

तीसरी प्रसिद्ध नगरी लंका में संगीत आयोजन नित्य होते रहते थे। रावण संगीत शास्त्र का प्रकाण्ड विद्वान था। रावण जहां जहां जाता था अपने साथ साथ 'स्वर्ण मय शिवलिंग' ले जाता था और शिवलिंग के पूजन के पश्चात् संगीत साधना में लीन हो जाता था और भगवान शिव के समक्ष अपना नृत्य एवं गान किया करता था। इससे रावण का संगीत ज्ञान प्रमाणित होता है। कैलाश पर्वत को उठाते समय साममंत्रों के द्वारा शिव स्तुति का प्रसंग भी रामायण में मिलता है। किन्तु रावण ने अपनी विद्या, ज्ञान एवं अपनी शक्तियों का दुरुपयोग करना प्रारम्भ कर दिया था। यहीं से रावण के उच्चकोटि के व्यक्तित्व का पतन प्रारम्भ होना शुरू हो गया।

उपर्युक्त विवेचना से यह स्पष्ट होता है कि रामायण काल का 'रामराज्य' सर्वजनसुखाय और कल्याणकारी राज्य था और उस काल का सांगीतिक इतिहास भी महत्वपूर्ण व शिक्षाप्रद है। सामान्य जन इससे आनन्द प्राप्त करते थे। रामायण गान का लक्ष्य लौकिक सुख के साथ अलौकिक सुख की प्राप्ति कराना है। उस काल में संगीत शिक्षा, साधना, तपस्या सामान्य जन को परमानंद के सुख के साथ–साथ उनके व्यक्तित्व को सरल, सुन्दर व आकर्षक बनाती है, यही रामायण का तात्पर्य है।

महाभारत में संगीत

महाभारत काल संगीत के त्रिविध (गीत, वाद्य, नृत्य) उपयोग की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। जन्म से लेकर मृत्यु तक किसी न किसी रूप में संगीत का प्रयोग किया जाना तत्कालीन समाज की कलाप्रियता का द्योतक है।

महाभारत काल में भगवान श्रीकृष्ण संगीत के महान आचार्य हो गए हैं। इन्हीं दिनों रासलीला का भी निर्माण हुआ। सामान्य जन इस काल में प्रत्येक कार्य को गाते बजाते किया करते थे।

विद्वानों का कथन है कि महाभारत–काल में संगीत का चरम सीमा पर था। श्रीकृष्ण की वंशी में विचित्र जादू था। श्रीकृष्ण जैसा महान् वंशी वादक अभी तक उत्पन्न नहीं हुआ है। श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व में अनेकों व्यक्तित्व समाहित थे, उनके इस सर्वांगीण व्यक्तित्व से सम्पूर्ण जगत प्रभावित हुआ। एक अन्य प्रसंग में कौरवों से जुए में हारने के बाद पांडवों को 13 वर्ष के वनवास के बाद एक वर्ष का अज्ञातवास भी काटना था। शर्त यह रखी गई थी कि उस एक वर्ष के अज्ञातवास में यदि पांडवों में से कोई भी पहचान में आ गया तो उन्हें फिर से 14 वर्ष का वनवास काटना पड़ेगा। अज्ञातवास के दौरान पांचों पांडव एक राजा के यहां अलग–अलग वेश धारण करके नौकरी करने लगे। तब अर्जुन ने राजा की बेटी उत्तरा को संगीत और नृत्य सिखाने के लिए बृहन्नला नाम की गायिका का वेश धरा था। अर्जुन संगीत कला में पारंगत थे। उन्हें कंठ संगीत एवं वीणा वादन पर सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त था।

इस काल में समाज के सभी वर्गों की शिक्षा में सांगीतिक विषयों का समावेश था। किंतु संगीत के द्वारा जीविकोपार्जन अच्छा नहीं माना जाता था वह केवल मनोरंजन का साधन माना जाता था।

धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक अवसरों पर संगीत प्रस्तुत करना इस काल की विशेषता थी। ऋषि आश्रमों पर भी संगीत का अत्यधिक प्रभाव था। आश्रम में निरंतर सामगान की ध्वनि गूंजती रहती थी। इस काल में वेणु, मृदंग, वीणा, शंख आदि वाद्यों का प्रचुर मात्रा में प्रमाण मिलता है।

पौराणिक काल में संगीत

पौराणिक काल में भक्ति व कीर्तन को बहुत महत्व दिया। विष्णु पुराण में कहा गया है कि 'जिस प्रकार अग्नि से स्वर्णादि धातुओं के मल का नाश होता है, उसी प्रकार भक्तिपूर्वक किया हुआ भवगत् कीर्तन सभी पातकों का नाश करने का उत्तम साधन है।' इसी प्रकार गरूड़ पुराण में भी कीर्तन का महत्व बताया गया है :

यदिच्छसि परं ज्ञानं ज्ञानाच्छ परमं पदम्।
तदा यत्नेन महता कुरू गोविंद कीर्तनम्।।

अर्थात् आत्मज्ञान तथा साधना से परम–पद पाने के लिए गोविंद का कीर्तन करो।

श्रीमद्भागवत में नवधा भक्ति के सांग में श्रवणं कीर्तनं – निवेदनम् श्रवण कीर्तन को वरीयता प्रदान की गई। पुराणों में तो यहां तक कहा गया है कि –

विलज्जयते उद्गयति नृत्यते च मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति।।

अर्थात् जो लज्जा छोड़कर उच्च स्वरों में गान करता है, नृत्य करता है ऐसा भक्त समस्त लोकों को पवित्र करता है।

इसी समय पनप रहे बौद्ध धर्म व जैन धर्म में भी संगीत को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। बौद्ध मंदिरों में गाई जाने वाली स्तुतियां भी संगीतमय थीं। बौद्ध धर्म में इसके चित्रित अंश भी प्राप्त होते हैं, जैसे गुत्तिल द्वारा इन्द्र की स्तुति करना, पंचशिख द्वारा वीणा के साथ इन्द्र की स्तुति आदि। बौद्ध धर्म में भक्ति का प्रभाव अधिक था।

जैन धर्म में भी अनेक राजस्थानी लोकगीतों तथा अन्य लोकगीतों की धुनों पर आधारित गीत मिलते हैं।

मुसलमानों के आक्रमण (11वीं शताब्दी) का संगीत पर प्रभाव पड़ा। परन्तु वे संगीत को ईश्वर व सामान्य जन से अलग कर पाने में असफल रहे और संगीत ने नया रूप लिया और उस समय विद्यापति ने राधाकृष्ण की प्रेमलीला की रचनाओं द्वारा, रामानन्द, धन्ना जाट, रैदास, भक्त नरसिंह, वल्लभाचार्य, कुंभन दास, स्वामी हरिदास, राधावल्लभीय द्वारा रासलीला का आरंभ, विट्ठलनाथ जी, सूरदास, नंददास, मीरा, कबीर, तुलसी आदि ने अपने संगीतमय पदों द्वारा मानव व संगीत को इतना मजबूती से जोड़ा जो आज तक चला आ रहा है।

स्पष्ट है कि संगीत का संबंध हर काल, हर परिस्थिति से रहा है, धर्म का कोई भी पंथ हो, सम्प्रदाय हो – शैवमत, वैष्णव मत, शाक्त मत, राधास्वामी मत, कृष्ण मत, ईश्वरवाद, अनीश्वरवाद, सगुण भक्ति, निर्गुण भक्ति, मूर्तिपूजा अथवा आर्य समाज, बौद्ध, जैन, सिख, मुसलमान कोई भी धर्म हो, संगीत का सभी में महत्व है। हिन्दू भजन से, सिख गुरूवाणी से और मुसलमान कव्वाली से अपने ईश्वर की आराधना करते हैं। यही भक्ति का सरलतम मार्ग भी है। कहा भी है :

पूजा कोटि गुणं स्तोत्रं स्तोत्रान्मोटिगुणो जपः।
जपात्कोटिगुणं गानं गानात्परतरं नहि।।

अतः गान से बढ़कर उपासना का कोई अन्य साधन नहीं है। संगीत का आधार जो कि नाद है उसकी उपासना से साधना से सभी देवता प्रसन्न हो जाते हैं, समस्त जगत नाद के अधीन है। इसलिये नादोपासना को श्रेष्ठ माना है।

संगीत में असीम सामर्थ्य है, जिसके द्वारा चित्त वृत्तियों का निरोध कर मन व आत्मा को पवित्र बनाया जा सकता है और किसी भी मानव का पवित्र मन उसे उत्कृष्ट व्यक्तित्व की प्राप्ति कराता है। नादोपासना को योग माना जाता है और योग आत्म प्राप्ति अथवा मोक्ष का एक मार्ग है। सम्पूर्ण जगत, प्रकृति यहां तक कि ईश्वर भी नाद का रूप है। जो व्यक्ति छल, छद्म, व्यभिचार, लोभ, कुत्सित आचरण से दूर रहकर संगीत की कष्टसाध्य तपस्या करता है ऐसे व्यक्ति का व्यक्तित्व दिन–प्रतिदिन निखरता (परिष्कृत) ही रहता है और संगीत के माध्यम से वह मोक्ष प्राप्ति की ओर अग्रसर हो जाता है।

उपरोक्त विश्लेषण से यह निष्कर्ष सहज ही निकाला जा सकता है कि संगीत और व्यक्तित्व में गहरा सम्बन्ध है और एक परिष्कृत व्यक्तित्व ही परिवार, समाज व राष्ट्र के उन्नयन में सक्रियतापूर्वक सहभागी बनता है।

–00–

अध्याय – 2

शास्त्रीय संगीत या संगीत का महत्व, स्थान व शिक्षा मानव जीवन के विकास में

जीवन रूपी ग्रंथ के पृष्ठों को कहीं से भी पलटिये, जीवन पथ के किसी भी मोड़ पर रुक कर देखिए वहीं आपको संगीत मिलेगा। जन्म से मृत्यु तक की शमशान यात्रा भी उसने गीत सुनते सुनते की, मानव में ही नहीं प्रत्युत् समूची सृष्टि और प्रकृति के कण–कण में संगीत सरिता का कर्णप्रिय कलकल–निनाद व्याप्त है। संगीत एक ऐसा विश्वव्यापी स्नेहसूत्र है जो हर समय विश्व की प्राकृतिक विविधता, मानवीय असंगति को एक मधुरतम और मौलिक एकता की अनुभूति से आबद्ध करता है। संगीत प्राणीमात्र के सुख–दुःख का साथी मोक्ष प्राप्ति का मधुरतम एवं पवित्र साधन है। मानव का चिर संगी संगीत है। आत्मा का सम्बन्ध परमात्मा से बताया गया है उसी प्रकार संगीत का संबंध भी आत्मा से बताया गया है। शास्त्रीय स्थापना के अनुसार, गायन, वादन, नर्तन की त्रिवेणी संगम ही संगीत है और इससे विमुख होने का दावा कोई नहीं कर सकता। संगीत के दो वर्ग हमेशा से इस युग में प्रचलित हैं : 1– शास्त्रीय (अभिजात) संगीत और 2– सुगम (लोकानुरंजक) संगीत।

शास्त्रीय संगीत से शाश्वत मूल्य, शाश्वत बने रहते हैं और यह कालनिरपेक्ष होता है जबकि सुगम संगीत कालनिरपेक्ष नहीं होता।

व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास करने की क्षमता और जीवन का दृष्टिकोण बनाने की सामर्थ्य शास्त्रीय संगीत में है और शास्त्रीय संगीत के कुछ तेज पुंज तत्वों से सबको प्रेरणा मिलती है।

'शास्त्रीय संगीत' जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, का अपना निजी शास्त्र है। शास्त्र नियम है और शास्त्रीय संगीत के प्रत्येक गायक तथा वादक को अपनी तरफ से इन नियमों का पूर्णतया पालन करना आवश्यक होता है। यह जानकर आश्चर्य होता है कि गायकों और वादकों को सरगम के 'सा' को साधने में ही महीनों लग जाते हैं और नियमित अभ्यास इसमें आवश्यक होता है। पं0 ओंकारनाथ ठाकुर जी के अनुसार यदि कलाकार एक दिन अभ्यास छोड़ देता है तो संगीत उसे चालीस दिन पीछे छोड़ देता है।

उपशास्त्रीय संगीत में यदि स्वरों में बदलाव किया जाता है तो कोई फर्क नहीं पड़ता। किंतु शास्त्रीय संगीत में ऐसा हर्गिज नहीं है। शास्त्रीय संगीत में वादी-संवादी, शुद्ध व कोमल स्वरों का विशेष ध्यान रखा जाता है जैसे पूरिया व मारवा के स्वर समान होते हुए भी उसमें न्यास से सम्पूर्ण राग ही बदल जाता है। क्योंकि राग का भी अपना एक व्यक्तित्व होता है उसे बदलने से सम्पूर्ण राग ही बदल जाता है।

अभिजात या शास्त्रीय संगीत में सबको आनन्द प्रदान करने की शक्ति है। इन्द्रियजन, बौद्धिक, मानसिक, आत्मिक ये आनन्द के चारों प्रकार अभिजात संगीत में अन्तर्भूत हैं और इन चारों प्रकारों के आनन्द की अनूभूति केवल शास्त्रीय संगीत में ही है। जीवन को उत्कर्ष की ओर ले जाने वाला आनन्द शास्त्रीय संगीत से ही प्राप्त होता है। व्यक्तित्व को विकसित करने अथवा उसे परिष्कृत बनाने का कार्य भी शास्त्रीय संगीत ही करता है। यूं तो सुगम संगीत, लोक संगीत व शास्त्रीय संगीत अपना महत्व व स्थान है जैसे लोक संगीत अपने प्रांत की खुशबू बिखेरता है, तो सुगम

संगीत सामान्य जन को प्रभावित करता है। सुगम संगीत भावजन्य प्रधान है। शास्त्रीय संगीत भावहीन होता है इसका यह अर्थ नहीं है परन्तु शास्त्रीय संगीत में भावों की अभिव्यक्ति के साथ–साथ सौन्दर्य का भी विचार किया जाता है।

लोकप्रियता की दृष्टि से भी जहां सुगम संगीत बहुजन समाज का मनोरंजन करता है, वहां लोक संगीत की भांति शास्त्रीय संगीत का अपना एक विशिष्ट क्षेत्र है। शास्त्रीय संगीत का अपना एक विशेष वर्ग है। शास्त्रीय संगीत में आवश्यक सहायक वाद्य, संगति करने वाले वाद्यकार, कला के पारखी, कला के मर्म को समझने वाले श्रोता भी चाहिये। शास्त्रीय संगीत का उद्देश्य केवल नवीनता नहीं है उसमें शास्त्रीय नियमों का नियंत्रण भी होता है। शास्त्रीय संगीत में सृजनशीलता है, शास्त्रीय संगीत में पुनरावृत्ति से प्रखरता आती है। व्यक्ति के जीवन में शास्त्रीय संगीत का विशेष महत्व है। संगीत समाज को प्रभावित करता है। गरम को नरम बनाता है। मानवीय दुःखों को कम करके मानव को सुख प्रदान करता है तथा मानव जीवन के सांस्कृतिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है।

महत्व

मानव जीवन में सभी कलाओं का अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है तथापि संगीत इस क्षेत्र में अग्रणी है। मानव जीवन का हर क्षण हर समय संगीतमय है। हर्ष उल्लास के अतिरिक्त मृत्यु जैसे शोक में भी संगीत है। संगीत से हमारे कौन से प्रयोजन सिद्ध होते हैं, वह मानव के लिए किस प्रकार उपयोगी है तथा किस तरह हमारा जीवन संगीत का ऋणी है, इन्हीं बातों का हम उल्लेख करेंगे।

1) संगीत ईश्वर प्राप्ति, आत्म साक्षात्कार का सरलतम साधन है। शास्त्रीय संगीत इसमें सहायक सिद्ध होता है।

2) नाद साधना योग की प्रथम सीढ़ी (प्राणायाम, ध्यान) योग मोक्ष प्राप्ति तथा आत्म–दर्शन का एक मार्ग है।

3) शास्त्रीय संगीत मानसिक तनाव को दूर कर मानव जीवन में स्फूर्ति पैदा करता है।

4) संगीत जीवन में उल्लास तथा सरसता बनाए रखता है।

संगीत भावों की अभिव्यक्ति से अपनी बात दूसरों तक पहुंचाता है।

देश भक्ति की भावना पैदा करता है, संगीत तोड़ता नहीं जोड़ता है।

5) व्यावसायिक दृष्टिकोण से भी संगीत को मानव ने अपनी आजीविका का साधन बना लिया है। फिल्म में, विज्ञापनों में, नाटक में संगीत का महत्वपूर्ण कार्य है।

संगीत नाटक को प्रभावशाली तथा भाव–संप्रेषण में सक्षम बनाता है। इस उपयोगिता के कारण ही भरत ने संगीत को 'नाटक की शय्या' कहा है। संगीत नाटक में वास्तविकता पैदा करता है, दृश्य को स्वाभाविक रूप प्रदान करता है, दृश्यों के अनुकूल वातावरण पैदा करता है, भावों को और अधिक सशक्त करके दृश्य में सौन्दर्य लाने में संगीत की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। किसी युद्ध के दृश्य में कोलाहल के साथ नगाड़े, बिगुल, तूर्य आदि का वादन कर दृश्य को साकार रूप प्रदान किया जाता है।

जहां एक ओर जीवन की जटिल समस्याएं मनुष्य को चिंतित करती हैं वहां संगीत मनुष्य की सारी चिंताओं का निराकरण करता है। संगीत मानव के हृदय तथा बुद्धि को संतुलित रखता है। संगीत द्वारा सूक्ष्म बुद्धि का

विकास तथा ध्यान में एकाग्रता की शक्ति बढ़ती है, सूक्ष्म स्वर भेद से अथवा समान स्वरावली में वादी संवादी भेद से जब राग बदलता है तब उसकी पहचान रखना, उसे सीखना व समुचित भेद के साथ उसकी प्रस्तुति करना सूक्ष्म तथा तीव्र बुद्धि का विकास करता है।

हमने यहां संगीत के महत्व पर चर्चा की, किन्तु संगीत में भी यदि हम शास्त्रीय संगीत के पक्ष को देखें तो वह अन्य दो पक्ष, सुगम संगीत एवं लोक संगीत से सर्वोपरि ही दिखता है। क्योंकि शास्त्रीय संगीत ही व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास करता है। इसमें कठिन नियम होते हैं, अनुशासन होता है, कठिन तपस्या एवं कठिन साधना होती है। यहीं से व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया भी प्रारम्भ होती है। बस आवश्यकता है तो उसकी सही पहचान करने की।

संगीत शिक्षा का उद्देश्य व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास

शिक्षा का मूलतः अर्थ है – आंतरिक शक्तियों का सर्वांगीण विकास मनुष्य के व्यक्तित्व के सुप्त गुणों को जागृत करना ही शिक्षा का मूल उद्देश्य है। अरस्तु के अनुसार शिक्षा का अर्थ है 'स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन का निर्माण करना।'

शास्त्रीय शिक्षा का अर्थ केवल किसी विद्यालय में शिक्षा ग्रहण करना ही नहीं है यह अनौपचारिक व औपचारिक तरीके से भी प्राप्त होती है। कभी बालक अपने घर में अपने बड़ों से, परिवारजनों से अनुकरण कर शिक्षा ग्रहण करता है यह अनौपचारिक शिक्षा होती है। संगीतज्ञ के घर में हमेशा संगीत का वातावरण रहता है जिससे संगीत का कुछ हिस्सा तो बालक स्वयं

ही सीख जाता है। जैसे भाषा भी बालक स्वयं सीख लेता है उसे किसी विद्यालय की आवश्यकता नहीं होती है।

औपचारिक शिक्षा में विद्यालयीन शिक्षा का अन्तर्भाव होता है। यहां शिक्षक द्वारा विद्यार्थियों को शिक्षा दी जाती है। किंतु शिक्षा की दृष्टि से इन दोनों ही शिक्षाओं का महत्व है। शिक्षा व विद्या दोनों महत्वपूर्ण एवं आवश्यक हैं, शिक्षा योग्यता बढ़ाती है, शिक्षा से ही मनुष्य सूक्ष्म से सूक्ष्म और विशद् से विशद् बातों को हृदयंगम कर लेता है।

शिक्षा आत्मविद्या के विकास के साथ–साथ, प्रेम, स्नेह, सौजन्य, सौहार्द्र, सरलता, आत्मीयता, दया, करुणा, परोपकार, श्रद्धा भक्ति, आत्मविश्वास एवं आत्मबल की अभिवृद्धि करती है। शिक्षा व्यक्ति का समुचित व सर्वांगीण विकास कर मस्तिष्क में ज्ञान भरती है किंतु शिक्षा का वर्तमान अर्थ आज प्राचीन अर्थ से बहुत अलग हो चुका है।

शिक्षा किसी न किसी रूप में आदिकाल से ही चली आ रही है। जब मनुष्य आदिम अवस्था में। वर्तमान शिक्षा प्रणाली की तुलना प्राचीन काल में प्रचलित गुरूकुल पद्धति से करते हैं तो उसमें बहुत अंतर पाते हैं, प्राचीन काल में छात्र गुरूकुल से जहां सम्पूर्ण विकसित और प्रखरता सम्पन्न व्यक्तित्व लेकर निकलते थे वहीं आज के शिक्षण–संस्थानों से संस्कारों के नाम पर उनकी स्थिति शून्यवत् ही रह गई है। संगीत शिक्षा को वातावरण भी प्रभावित करता है। वातावरण व्यक्ति के जीवन के विकास व व्यवहार पर प्रभाव डालता है। संगीत की दृष्टि से यदि विचार करें तो ज्ञात होगा कि संगीतज्ञ बनने के लिए केवल संगीतमय वातावरण आवश्यक नहीं होता। वातावरण के साथ–साथ अन्य बातें भी महत्व रखती हैं, जैसे रूचि, अनुकूल वातावरण व जन्मजात गुणों के साथ पारंगतता के लिए यह (रूचि) आवश्यक है।

गुरू शिष्य को संगीत शिक्षा प्रदान करता है। व्यक्ति में रचनात्मक शक्ति भी होती है इसलिए प्राप्त की गई शिक्षा का विकास होता है। गुरू के व्यक्तित्व की छाप गुरू द्वारा प्रदत्त शिक्षा में होती है, परन्तु हर गुरू की अपनी अलग-अलग विशेषताएं होती हैं। इसलिए मूलभूत गुण जैसे आवाज लगाने का ढंग, लयकारी का प्रयोग आदि एक समान होते हुए भी किराना घराने के, 'संवाई गंधर्व' भीमसेन जोशी तथा अब्दुल करीम खाँ की गायकी अलग है। किसी भी व्यक्ति के लिए जो संगीत शिक्षा ग्रहण कर रहा है उसके लिए उसे अच्छे गुरू का होना आवश्यक है। यदि व्यक्ति अपने मन को कोमल रखे और अपने व्यक्तित्व को परिष्कृत कर निश्छल मन से गुरू से संगीत शिक्षा ग्रहण करता है तब उसकी गायकी (वादन, नृत्य) में एक रोशनी दिखाई पड़ती है।

घरानेदार शिक्षण विधि के बारे में सम्य् शोध करने पर ज्ञात होता है कि घरानों की निर्मिति मुख्यतः गुरू शिष्य परम्परा पर ही आधारित होती है। प्रायः गुरू एक समय में एक ही शिष्य को सिखाता है। गुरू अपनी आवाज से, रियाज और परिश्रम से जिस सुन्दर गायकी का निर्माण करता है उसी को वह अपने शिष्यों के कंठ में उतारने के लिए सालों तक प्रयत्न करता है।

सभी घरानों की अपनी-अपनी विशेषताएं होती हैं। किसी घराने में तान की विशेषता है तो किसी में गमक की, किसी घराने के प्राण, बहलावा व मींड है तो किसी घराने में लड़-गुंथाव व जोड़ तोड़ का काम। डा0 ओजेशप्रताप सिंह के अनुसार 'किसी भी कलाकार के व्यक्तित्व की झलक उसकी गायकी में दिख जाती है।' क्योंकि कलाकार अन्दर से जितना कोमल होगा उसका गाना भी उतना ही सुन्दर व आकर्षक होगा। कलाकार स्वभाव से जैसा होगा उसके गायन व वादन में उसकी झलक अवश्य दिखाई पड़ेगी। यह व्यक्तित्व का ही एक अंग है। सभी कलाकार अपने-अपने घरानों

की विशेषताओं का अनुसरण कर अपने घरानों की ख्याति को अक्षुण्ण बनाए रखते हैं। किंतु वर्तमान समय में कलाकार अन्य घरानों से प्रेरित होकर दूसरे घरानों की विशेषताओं को अपनी गायकी में सम्मिलित करके गाते बजाते हैं।

संगीत शिक्षा पद्धति में निरंतर परिवर्तन होता जा रहा है। यह कोई आश्चर्यजनक घटना नहीं है। किन्तु आज की परिस्थिति में संगीत शिक्षा मानव जीवन का किस तरह विकास कर रही है उसका समाज में क्या स्थान है उसका उल्लेख हम यहां करेंगे।

प्राचीन समय में गुरू और शिष्य में दीया और बाती का सम्बन्ध होता था। इसका यह अर्थ नहीं कि आज गुरू का स्थान बदला है किंतु यह एक कटु सत्य भी है कि अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु वर्तमान भौतिक युग में गुरू अथवा शिष्य के संबंध भी बदले हैं। क्योंकि आज के इस तेज रफ्तार जीवन में न तो गुरू के पास शिष्य को कुछ सिखाने का समय है न शिष्य के पास सीखने का समय गुरूओं की बात की जाए तो प्राचीन समय में, स्वामी हरिदास जी ने 'तानसेन' जैसे महान संगीतज्ञ को निखारकर एक इतिहास रचाया और आज भी निरंतर शास्त्रीय संगीत सम्पदा घरानों के माध्यम से और अच्छे गुरूओं के आदर्शों से जीवित है।

आज लोकतांत्रिक समाज में संगीत की संस्थागत शिक्षा प्रणाली ने भी अपनी जड़े जमाई हैं। गुरू शिष्य परम्परा एक आदर्श प्रणाली है यह मानते हुए भी संस्थागत शिक्षा प्रणाली को रद्द नहीं किया जा सकता। दोनों प्रणालियों को अपने उद्देश्यों को ध्यान में रखकर दोषों को दूर करना होगा।

संस्थागत संगीत शिक्षण प्रणाली को पं0 विष्णु दिगम्बर और पं0 भातखण्डे जी ने प्रचार प्रसार कर देश में फैलाया। संगीत जगत उनके इस कार्य को कभी नहीं भूल सकता। भातखण्डे जी ने संगीत के क्रियात्मक पक्ष

के साथ–साथ शास्त्र का अध्ययन कर स्वयं अनेक संगीत शास्त्र ग्रंथ लिखे। विष्णु दय और भातखण्डे जी का एक ही उद्देश्य था कि प्राचीन घरानेदार संगीत धरोहर 'जो केवल वंश परम्परा, निज के रिश्तेदारों तक ही सीमित थी', को जन–जन के समक्ष लाकर संगीत शिक्षण को सुलभ कराना। इन्होंने कई संगीत विद्यालयों की स्थापना की जो आज भी प्रचलित है। इनके इस प्रयास से आज हर वर्ग का व्यक्ति सुलभता से संगीत शिक्षा प्राप्त कर रहा है किन्तु संगीत विद्यालयों, संगीत संस्थानों, वहां के अध्यापकों और शिष्य संगीत सिखाने और सीखने में कितने प्रयत्नशील हैं यहां आज भी एक प्रश्नचिन्ह लगा हुआ है।

आज के भौतिक युग में शिक्षा का अर्थ बहुत हद तक बदल गया है और संगीत शिक्षण विधि में आमूलचूल परिवर्तन आ गया है, किन्तु इसके कुछ अपवाद भी हो सकते हैं, क्योंकि आज भी कुछ नवीन पीढ़ी के शिष्यगण उत्तम कलाकार बन रहे हैं और परम्परागत घरानेदार पद्धति को जीवित रखने में अपना योगदान दे रहे हैं। परन्तु हम यदि शिक्षण संस्थाओं, महाविद्यालयों में संगीत शिक्षण के विषय पर चिंतन करें तो हम कह सकते हैं कि वर्तमान समय में संगीत शिक्षण संस्थाओं का विस्तार तो हो रहा है, उपाधियां प्राप्ति हेतु छात्र संगीत सीखते हैं और शिक्षक भी पाठ्यक्रम से एक या दो रागों को भी सिखाकर परीक्षा की तैयारी करवाते हैं और इसी से छात्र अंक प्राप्त कर उत्तीर्ण हो जाते हैं और स्वयं शिक्षक बनने का भ्रम पाल लेते हैं और अल्पज्ञान मनुष्य के लिए घातक सिद्ध होता है। इसमें संगीत शिक्षक का भी दोष नहीं है क्योंकि संगीत शिक्षक को एक निश्चित अवधि में वर्ष भर में एक निश्चित पाठ्यक्रम की परीक्षा प्रणाली हेतु तैयार करना होता है। ऐसे में होता यह है कि चालीस मिनट की अवधि वाली कक्षा में शिक्षक एक फ्रेम जड़ी गायकी विद्यार्थियों को सिखाते हैं इससे सामूहिक

शिक्षण हेतु अधिकाधिक जनसमूह तो उमड़ता है परन्तु उत्तम कलाकार तैयार नहीं होता।

वर्तमान समय में शास्त्रीय संगीत का स्तर ऊपर उठाने तथा जनसाधारण तक सुलभ कराने की दृष्टि से केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकार को इस क्षेत्र में और अधिक प्रयास करने की आवश्यकता है। प्रतिभावान छात्रों को छात्रवृत्ति में वृद्धि करना भी नितांत आवश्यक है। इस होड़ से भी प्रभावित होकर छात्रों में संगीत के प्रति तीव्र रूचि पैदा होती है। रेडियो, टी.वी. के माध्यम से शास्त्रीय संगीत को बहुत सरल व सुलभ तरीके से सर्वसाधारण में परोसना चाहिये। क्योंकि जिन व्यक्तियों की रूचि शास्त्रीय संगीत के प्रति कम होती है वह सदैव इसे भारी भरकम संगीत समझते हुए इसे अपनाने से हिचकिचाते हैं।

समाज के कई शिक्षित वर्ग भी अभी शास्त्रीय संगीत को ठीक से नहीं समझ सके हैं। उनके अनुसार संगीत केवल मनोरंजन तक ही सीमित है। उनके अनुसार संगीत से पेट नहीं भरता यह मात्र उनमें संगीत के प्रति जानकारी का अभाव ही है। आजकल संगीत से संबंधित व्यवसाय की अनेक संभावनाएं दिनों दिन बढ़ती ही जा रही हैं। यदि हर संगीतज्ञ, हर संगीत शिक्षक, हर संगीत विद्यार्थी, हर संगीत रसिक, शास्त्रीय संगीत की विशेषताओं के विषय में उसकी उपयोगिता और संगीत के महत्व के विषय में समाज को सही जानकारी देने का प्रण करे तो निश्चय ही वह दिन दूर नहीं जब संगीत के उज्ज्वल भविष्य के द्वार खुलेंगे और संगीत शिक्षा रूपी प्रकाश से न केवल हमारा सामाजिक वातावरण आलोकित होगा बल्कि हम सब पुनः संगीतमय वातावरण में व संगीत के एक नये स्वरूप के सृजन में लग जाएंगे जो सहृदय और समर्पित भावों द्वारा 21वीं सदी के संभावित तनावों से मुक्ति दिलाने में सहायक हो सकेगा। जबकि युवा पीढ़ी अपनी सांस्कृतिक धरोहर से अछूती हो रही है, चारों तरफ हिंसा, दिशाहीनता,

दिग्भ्रमिता विद्यमान है तो आवश्यकता है शास्त्रीय संगीत के उस नाद की जो युवा आक्रोश को शांत कर सृजनता की ओर ले जाए एवं अपनी माटी की खुशबू से उन्हें सराबोर कर समाज एवं राष्ट्र को सबल उन्नत राष्ट्र बनाने में मदद दे। संगीत शिक्षा व्यक्तिगत विकास ही नहीं वरन् सम्पूर्ण मानव जाति में शांति एवं स्नेह का संदेश देती है जो विश्व–कल्याणकारी है।

अध्याय – 3

संगीत, व्यक्तित्व एवं मनोविज्ञान

मनोविज्ञान की परिभाषा

Psychology शब्द यूनानी भाषा के Psyche और Logas शब्दों से बना है। Psyche का तात्पर्य आत्मा से है और Logas का तात्पर्य ज्ञान से है। इस प्रकार शाब्दिक अर्थ में Psychology आत्मा का ज्ञान अथवा विज्ञान है।

ग्रीक दार्शनिकों ने मनोविज्ञान को मन का विज्ञान कहा है, यह चेतना का विज्ञान है।

मनोविज्ञान का अर्थ अनेक विद्वानों ने अलग–अलग दिया है और यही कारण है कि मनोविज्ञान विकासशील एवं गतिशील है।

संगीत मन को लुभाता है और मनोविज्ञान मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करता है। संगीत में रूचि, ध्यान, कल्पना, परीक्षण, स्मृति, प्रेरणा, सीखना, अनूभूतियां, चिंतन भावना, अनुवांशिकता, परिवेश और व्यक्तित्व विकास, ये सभी मनोवैज्ञानिक पहलू हैं।

संगीत एवं मनोविज्ञान का सम्बन्ध

संगीत एवं मनोविज्ञान में अत्यंत गहरा सम्बन्ध है। यदि हम संगीत को मनोविज्ञान की दृष्टि से देखना चाहते हैं तो इसके लिए हमें मनोविज्ञान

के कुछ महत्वपूर्ण पक्षों या तत्वों को समझना आवश्यक है। मानवीय व्यवहार के पहलुओं को हम तीन भागों में बांटते हैं :

1) ज्ञानात्मक तत्व
2) क्रियात्मक तत्व
3) भावनात्मक तत्व

ज्ञानात्मक तत्व वह तत्व है जिसके द्वारा हमें किसी विषय का भली भांति ज्ञान होता है। संगीत के विषय में राग का स्वरूप, स्वर लगाना, गाना–बजाना आदि यह सब ज्ञानात्मक तत्व से ही प्रेरित होता है।

मन के भावों को व्यक्त करने के लिए मनुष्य क्रियात्मक कला का सहारा लेता है। संगीत का ज्ञान क्रियात्मक तत्व को सफल बनाता है।

भावात्मक तत्व के ज्ञान से किसी भी विषय में भाव उत्पन्न किए जा सकते हैं, विशेषतः संगीत विषय में। यही तत्व संगीत में भाव उत्पन्न करता है। भजन और गज़ल के भाव तथा शास्त्रीय संगीत के भाव हमें सुनने से तथा गाने से अलग–अलग मालूम होते हैं। यह इसी तत्व के कारण होता है।

किसी भी गीत को श्रवण करने के पश्चात् श्रोता उसकी धुन अथवा उसके स्वरूप को ही हृदयंगम करता है। उस गीत को गायक ने किस मन, प्रवृत्ति के वशीभूत होकर गाया है, उस समय गायक के मानस में कौन कौन सी प्रेरक शक्तियां कार्य कर रही हैं इस पर बहुत कम लोग ध्यान देते हैं। गायकों के विभिन्न प्रहरीय गीतों को सुनकर उनके मानसिक संसार का अनुमान लगाया जा सकता है।

प्रातःकाल 'दो बजे' यह वह समय है जब मनुष्य (योगी) अपनी निद्रा को त्यागते हैं और अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं इस समय जो गीत की धुन

होती है वह पवित्र तथा शांतिदायक होती है। इस समय की संगीतमय धुन अति ज्योर्तिमय हो जाती है और परमात्मा से एकात्मकता स्थापन का आभास कराती है। इस समय की सर्वोचित धुन 'मालकौंस' है।

प्रातःकाल चार से पांच बजे के मध्य योगी अपनी मनःप्रवृत्ति में परिवर्तन करता है। इस समय उसका कार्य एक पुजारी जैसा होता है, उस पुजारी का उद्देश्य मानव का कल्याण करना होता है। इस समय के लिए उपयुक्त राग भैरव है। भैरव राग भक्ति रसयुक्त है और यह समूचे वातावरण को भक्तिमय बना देता है।

प्रातःकाल दस से ग्यारह के मध्य कलाकार प्रातःकालीन श्रम के लिए उत्साहवर्धन करता है। इस समय का उपयुक्त राग काफी है।

दोपहर को दिन गर्म हो जाता है। परिश्रम से चूर व्यक्ति कुछ आराम तथा मानसिक शांति चाहता है उस समय सारंग व मेघ मल्हार से गीत की धुन रसमयी हो जाती है।

दोपहर अल्पावकाश के बाद मनुष्य पुनः क्रियमाण होना चाहता है, उस समय राग दरबारी और कान्हड़ा राग से मनुष्य का उत्साहवर्धन होता है तथा उसे शांति मिलती है।

दोपहर के बाद (सायंकाल) में पहाड़ी राग की अपनी विशेषता होती है। यह राग विरह के भावों को उड़ेलने में सक्षम होता है।

सायंकाल 6 से 7 बजे का समय 'कल्याण राग' का होता है। इस राग में गायक मानो ईश्वर का धन्यवाद प्रस्तुत करता है। दिन भर परिश्रम के बाद वह ईश्वर के प्रति आभार प्रकट करता है और कर्मठता की दृष्टि से और अधिक सामर्थ्य प्राप्त करने का आशीर्वाद मांगता है।

रात्रि में लोग अपने-अपने ढंग से अपना मनोरंजन करते हैं। इस समय राग, नट, केदार तथा बिहाग होते हैं। कलाकार रसिक बिहाग राग द्वारा आत्मीय संगीत की स्मृति को जगाया करते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय संगीत का लोगों के मन पर क्या प्रभाव पड़ता है और प्रत्येक राग के गायन या वादन का उसके निर्धारित समय पर ही उसका पूरा सौन्दर्य दिखाई पड़ता है। इस आधार पर हम यह भी कह सकते हैं कि भारतीय संगीत का समयचक्र काफी हद तक मनोवैज्ञानिक है।

व्यक्ति पर स्वरों का मनोवैज्ञानिक प्रभाव

भारतीय संगीत मैलोडी युक्त है और इसमें एक स्वर की प्रधानता रहने के कारण हम स्वरों का प्रभाव सरलता से अनुभव कर सकते हैं।

भारतीय संगीत में विशेष प्रकार की संवेदना है और विचारों को प्रकट करने के लिए हमें विशेष प्रकार के उच्चारण की सहायता लेनी पड़ती है। नम्रता, जोश अथवा भय में मनुष्य की वाणी भी भिन्न प्रकार का भाव उच्चारण करती है और मुख पर भी मानसिक विचारों का प्रतिबिम्ब आ जाता है। अब हम इसी मानसिक और शारीरिक प्रभाव का विश्लेषण करने के लिए संगीत के स्वरों को लेंगे।

षड्ज का उच्चारण करने से मुख पर शांति और चमक आ जाती है, नेत्र बंद हो जाते हैं। मन बाहर की वस्तुओं से हटकर ध्यान मग्न हो जाता है। मुख अथवा भौंह पर कोई झुर्री या सिकुड़न नहीं पड़ती। इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण शरीर शांति और सुख का अनुभव करता है। यह षड्ज का

प्रभाव होता है। इसके प्रभाव को देखने के लिए आधार वाद्य (तानपुरा आदि) बजते रहना आवश्यक होता है।

कोमल ऋषभ और कोमल धैवत मनुष्य के मन में कुछ बेचैनी सी महसूस कराते हैं।

तीव्र ऋषभ और तीव्र धैवत ज्ञानेन्द्रियों द्वारा परिस्थितियों का ज्ञान कराते हैं।

कोमल गांधार और कोमल निषाद् – अरूचिकर वातावरण उत्पन्न करते हैं शुद्ध गंधार से शीतलता का अनुभव होता है।

तीव्र मध्यम दु:खी एवं करुण सा दिखाई देता है। इस समय गायक की आत्मा किसी शांतिदायक अन्य स्वर को खोजती प्रतीत होती है और यह शांति उसे अगले स्वर पंचम में मिल जाती है। भावों का यही क्रम अब पंचम से तार षड्ज की ओर जाने में है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संगीत तथा मानसिक प्रक्रिया एक दूसरे पर आश्रित होती है। संगीत का उद्‌गम स्थल ही मन है। मन संगीत के प्रस्फुटन का आधार स्तम्भ है। मन के दोनों पक्ष (शारीरिक व मानसिक) संगीत उत्पत्ति में प्रेरक शक्ति का काम करते हैं।

इसके उपरान्त हम संगीत में मनोवैज्ञानिक कारकों का संक्षेप में उल्लेख करेंगे।

स्मृति

स्मृति का अर्थ है किसी चीज का अनुभव कर उसको अपने मन में संग्रहित करके रखना और आवश्यक समयानुसार उसे प्रस्तुत करना। राग को सीखना, सुनना फिर उसे अच्छे ढंग से प्रस्तुत करने में ही संगीतकार

की श्रेष्ठता है। यदि गायक, वादक ने नियम से हटकर एक भी स्वर गलत लगा दिया तो राग का सम्पूर्ण अस्तित्व ही नष्ट हो जायेगा। अतः उच्चकोटि के कलाकार के लिये तेज स्मरण शक्ति का होना अति आवश्यक है।

कल्पना

कल्पना शक्ति हर मनुष्य में अपनी सामर्थ्य के अनुसार अलग–अलग होती है। कल्पना शक्ति के सहारे ही कलाकार राग आदि के नियमों का प्रयोग करते हुए उन नियमों के साथ स्वयं की कल्पना का भी पूरा–पूरा प्रयोग करता है। राग में स्वर का लगाव – बोल, तान, कण, मींड आदि का प्रयोग अपनी कल्पना के अनुसार करते हैं।

ध्यान / चिंतन

ध्यान से मन को एकाग्र किया जाता है और चिंतन एक मानसिक अवस्था है। राग में यदि एक भी नियम ध्यान से परे हो जाएगा तो सारा संगीत भ्रष्ट हो जाता है। ध्यान से राग के प्रस्तुतिकरण में निखार आता है।

रूचि

रूचि दो प्रकार की होती है, आंतरिक व बाह्य। जब तक मन में रूचि (इच्छा) नहीं होगी तब तक मनुष्य कुछ भी प्रयत्न करे वह संगीत नहीं सीख सकता।

सीखना

सीखना भी एक मानसिक प्रक्रिया है। यह भी दो प्रकार की हो सकती है: (1) समझ कर (2) रट कर

सीखना भी संगीत में अपना स्थान रखता है। जब तक हम किसी कला को सीखेंगे नहीं तो वह हमें कैसे आ सकती है ? संगीत को हम केवल समझ कर ही सीख सकते हैं। यदि संगीत को हम रट कर सीखें तो भूलने पर वह कभी भी गलत हो सकता है। समझ से हम संगीत में स्वयं उपज (Produce) कर सकते हैं।

संवेग

संवेग शब्द किसी भी प्रकार के आवेश में आना, भड़क उठना, उत्तेजित होने की दशा को सूचित करता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण में संवेद के अन्तर्गत, भाव, आवेग, शारीरिक व दैनिक सभी प्रतिक्रियायें आती हैं। संवेग तीव्र उद्‌वेग होता है यह यकायक उत्पन्न होता है और तीव्रता के लिए होता है तथा कुछ क्षण के बाद ही लुप्त हो जाता है।

मनोविज्ञान में संगीत में भावों की अभिव्यक्ति को संवेग बताया है। व्यक्ति अपने संवेगों को कला के माध्यम से व्यक्त करता है। दैनिक जीवन में हमारे बहुत से भाव होते हैं जिन्हें हम संगीत द्वारा व्यक्त करते हैं जैसे भय, शृंगार, करुण इत्यादि।

इन रसों में व्यक्ति के जीवन में यदि कोई भी रस स्थायी हो जाता है तब वह अपना कोई विषय गाने के लिए चुन लेता है।

यही सब बातें किसी कलाकार के व्यक्तित्व को उच्चकोटि का बनाती हैं और कलाकार अपनी तपस्या, चिंतन द्वारा अलौकिक एवं चमत्कारिक रचनाएं प्रस्तुत करते हैं। इससे कलाकार के मस्तिष्क में प्रगाढ़ता बढ़ती है और लगन उत्पन्न होती है तथा कलाकार की सृजनात्मकता बलवती होती है।

—00—

अध्याय – 4

संगीत और सौन्दर्यानुभूति – भाव पक्ष, कला पक्ष

सौन्दर्य शास्त्र मानवीय चेतना के उस अंश का विधिवत् अध्ययन करता है, उसके विश्लेषण, विकास, सृजन, आस्वादन सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार करता है, जिस अंश को हम 'आनन्द' (रस) 'आह्लाद' की अनुभूति कहते हैं और जो वस्तु के सौन्दर्य से उत्पन्न होता है।

सौन्दर्य की अनुभूति व्यापक और महत्वपूर्ण है। इससे हृदय सरस और जीवन उर्वर होता है; बुद्धि को नवीन और कल्पना को सजीवता प्राप्त होती है। इस महत्वपूर्ण अनुभूति का अनुशीलन करने, इसके स्वरूप और स्वभाव को समझने, जीवन की दूसरी अनुभूतियों के साथ इसका सम्बन्ध स्पष्ट करने तथा इसकी पुष्ट और रचनात्मक शक्ति को समझने के लिए जिसमें कला का जन्म होता है, इसी व्यवस्थित विचारमाला को हम सौन्दर्यानुभूति कहते हैं।

संगीत में सौन्दर्य का आधार स्वर है। स्वर का मूल नाद या ध्वनि है। भारतीय संगीत में 12 स्वर एवं 22 श्रुतियां हैं और ये स्वर संगीत की वर्णमाला हैं जिनके विविध विन्यास से जन–चित्त का रंजक राग उत्पन्न होता है। गायक राग को साधने के लिए कठिन तपस्या करता है और रसिकों को नाद, स्वर, लय, ताल की सौन्दर्यानुभूति कराता है।

प्रत्येक स्वर का अपना एक वैभव एवं माधुर्य होता है और उन स्वरों के विन्यास से संगीत में 'रूप' का उदय होता है, यह रूप दृश्य नहीं श्रव्य होता है।

रूप के गुणों में 'संगति' (Harmony) का विशेष महत्व है, किसी स्वर का प्रभाव हृदय को द्रवित करना होता है तो कोई स्वर उसकी जड़ता को मिटा कर अपने स्वरूप का आरोप करना होता है। किन्तु प्रत्येक स्वर अपना एक अलग स्थान और व्यक्तित्व रखता है जिसके कारण इसका प्रभाव भी भिन्न रहता है।

संगीत में सौन्दर्य के लिए 'संगति' (Harmony) पर्याप्त है। पाश्चात्य संगीत ने इसके विकास के लिये प्रयत्न किया है और 'संगति' को परिष्कृत, पुष्ट और सूक्ष्म बना दिया है। संगति में यदि हम लय अथवा स्वरों के उत्थान–पतन पर विशेष ध्यान न दें तो केवल प्रत्येक स्वर और उसके अन्य स्वरों से सम्बन्ध के प्रश्न को महत्व दिया जा सकता है। भारतीय संगीत ने 'राग' प्रधान रूप का विकास किया है जो कि संगीत का परम रूप है।

'सौन्दर्य–शास्त्र' का अर्थ वाडमगार्तेन ने संवदेनशील ऐन्द्रिय बोध के विषय में बताया।

हीगेल ने 'दी फिलॉसफी ऑफ फाइन आर्ट' की भूमिका में सौन्दर्य–शास्त्र पर विचार करते हुए यह कहा है कि सौन्दर्य शास्त्र का सम्बन्ध सौन्दर्य के संपूर्ण क्षेत्र से माना जाता है। उनकी दृष्टि से सौन्दर्य शास्त्र ललित कलाओं का दर्शन है जिसमें संगीत भी प्रमुख है।

संगीत में सौन्दर्यानुभूति नाद के प्रभाव से उत्पन्न होती है। यदि नाद मधुर और मनोहर है तो इसका आस्वादन आँख बंद करके किया जाता है। इसमें तन्मय होने के बाद रसिक दृश्य, स्थूल और स्थिर जगत को छोड़कर श्रव्य, सूक्ष्म और तरल जगत में चला जाता है। संगीत का आस्वादन करने वाला रसिक अपने जीवन में संगीत के प्रवाह से इतना आनन्दित हो जाता है कि मानो वह जीवन की मूल दशा की ओर लौट रहा है। जीवन की मूल दशा वह है जहां हमारे व्यक्तित्व के स्थूल, मानसिक व भावनात्मक बंधन

नहीं हैं, जहां अव्यक्त, अनन्त चेतना का दिव्य आलोक है, जहां जीवन और मृत्यु, लाभ–हानि, पुण्य और पाप, सत्य और असत्य के द्वन्द्व शांत हो जाते हैं और रहता है केवल जीवन का सत् चिदानन्दमय तरल प्रवाह। संगीत की सौन्दर्यानुभूति इसी सुख की अवस्था का उदय है।

संगीत में रस और भाव की प्रधानता रहती है और रस को संगीत का प्राण माना गया है।

कला और भाव दोनों ही संगीत के इस रसात्मक स्वरूप के पोषक हैं।

कलापक्ष में राग के अन्तर्गत ताने, गमक, मींड और अलंकार आते हैं। इनका कुशलतापूर्वक प्रयोग कर गायक अथवा वादक संगीत को मधुर व प्रभावशाली बनाता है। ध्रुपद व ख्याल शैली भी कलापक्ष प्रधान रहते हैं।

भाव पक्ष में शब्द और नाद का अटूट सम्बन्ध होता है। इसमें साहित्य की प्रधानता होती है। अच्छे साहित्य व संगीत के सुष्ठ समन्वय से ही मनोहारी वातावरण की सृष्टि सम्भव है। भावपक्ष प्रधान गायकी में ठुमरी, कव्वाली, ग़जल व भाव गीत आदि हैं।

आज के समय में जो शास्त्रीय संगीत प्रचलित है उसमें तानों और आलापों को ही प्रमुख माना जाता है, किन्तु जो संगीत का वास्तविक मूल उद्देश्य – रस की अभिव्यक्ति को भुला दिया जाता है और यदि गायक मात्र अपनी कला पक्ष के माध्यम से श्रोताओं को चमत्कृत करना ही अपना उद्देश्य बना लेंगे तो फिर कृत्रिम कलात्मकता के अतिरिक्त और शेष ही क्या रहेगा? गायक शब्दों की पुनरावृत्ति करें लेकिन वे शब्दों को तोड़–मरोड़ कर प्रस्तुत न करें क्योंकि इससे शब्द समझ ही नहीं आते हैं। इससे श्रोता व गायक के बीच बनी तारतम्यता टूट जाती है।

संगीत में रस की अभिव्यक्ति तभी संभव है जब कलापक्ष और भावपक्ष दोनों का अनुपात ठीक रहे। स्वरों के अभ्यास के बाद आलाप व तानें भावाभिव्यक्ति में सहायता करती हैं किन्तु कुछ गायक इनका प्रयोग इतना अधिक कर देते हैं जिससे तानें ही सर्वेसर्वा हो जाती हैं। इसके विपरीत बहुत से गायक भाव पक्ष को इतना प्रधान कर देते हैं कि कलापक्ष गौण ही हो जाता है और उससे गायन शास्त्रीयता से हटकर सुगम व लोक संगीत की ओर जाने लगता है। आधुनिक काल में संगीत में कलापक्ष ही अत्यधिक दिखाई पड़ता है।

कला और भाव दोनों ही संगीत के इस रसात्मक स्वरूप के पोषक हैं। कला पक्ष संगीत के बाह्य भाग को अलंकृत करता है, जबकि भाव पक्ष संगीत की आत्मा को शोभा प्रदान करता है। यदि कला कलाकार का शरीर है तो भाव कलाकार की आत्मा। इसलिये कलाकार को अपनी गायकी में दोनों पक्षों का सही संतुलन करना अति आवश्यक है।

—00—

अध्याय – 5

सांगीतिक प्रतिभाओं एवं अभिरूचि की खोज

एक दिन स्वामी हरिदास जी अपनी शिष्य–मंडली के साथ किसी बाग में होकर गुज़रे, तो बालक तन्ना ने एक पेड़ की आड़ में छुपकर शेर जैसी दहाड़ लगाई। डर के मारे सभी लोगों के दम फूल गए। स्वामी जी के खोजने के बाद उन्हें दहाड़ता हुआ बालक मिल गया। बालक की इस शरारत से स्वामी जी बहुत प्रसन्न हुए और तब तन्ना ने अन्य पशु पक्षियों की आवाज भी निकाली तो स्वामी जी उसको सुनने के उपरांत मंत्रमुग्ध हो गए और उसके पिताजी से बालक को संगीत–शिक्षा देने के निमित्त मांगकर अपने साथ वृन्दावन ले आए और आगे चलकर वही बालक एक महान संगीतकार (गायक) के रूप में सुप्रसिद्ध हुआ।

महान संगीतकार स्वामी हरिदास जी ने तन्ना की प्रतिभा को पहचान कर उसे एक महान गायक बनाया, इस प्रकार संगीत जगत में ऐसी कई महान विभूतियां और प्रसिद्ध कलाकार हुए हैं जिनकी प्रतिभा का सही आकलन कर उन्हें समाज व राष्ट्र में प्रसिद्धि मिली।

कई बार देखा गया है कि कुछ बच्चों व कुछ व्यक्तियों में जन्मजात सांगीतिक गुण होते हैं किंतु अपनी इस अमूल्य प्रतिभा के विषय में वह अनभिज्ञ होते हैं। ऐसे में जो भी गुरू अथवा गुणीजन या जो संगीत की समझ रखता हो, उनके मूल्यों को समझता हो उनका कर्त्तव्य बनता है कि वह उन प्रतिभाओं को आगे लाएं और राष्ट्र की सांस्कृतिक धरोहर को बनाए रखें।

बालक की प्रतिभा का सही मूल्यांकन बाहर वालों से अधिक बालक के अभिभावक कर सकते हैं। वह बच्चों की प्रतिभाओं को दबाएं नहीं बल्कि बच्चे की प्रतिभा को समझते हुए उसे किसी योग्य गुरू के पास शिक्षा ग्रहण करने के लिए भेजें। इससे नित्य बच्चे के व्यक्तित्व का क्रमिक विकास होता रहता है।

संगीत और अभिरूचि

कभी कभी व्यक्ति अचानक ही संगीत के प्रति आकर्षित हो जाता है। संगीत का कोई भी तत्व उसे प्रभावित कर देता है। उस समय उस व्यक्ति में कला के प्रति अभिरूचि उत्पन्न होती है।

संगीत में अभिरूचि जन्मजात भी हो सकती है तथा अर्जित भी हो सकती है।

संगीत में अभिरूचि किन किन कारणों से उत्पन्न होती है इसका हम संक्षेप में उल्लेख करेंगे।

मनुष्य आदिकाल से ही आनन्द प्राप्ति की खोज करता आ रहा है यह उसकी जन्मजात प्रवृत्ति है। मनुष्य सम्पूर्ण जगत में सौन्दर्य देखना चाहता है इसलिए वह अपने आसपास अपने वातावरण, प्रकृति से प्रेरित होकर उसकी नकल करके अपनी कला में उतारता है। कला सौन्दर्य की निर्मिति करती है। इसे मनुष्य की मूल प्रवृति ही कहना चाहिये। नवनिर्मिति से उसे आनन्द प्राप्ति होती है। इससे मनुष्य की आत्मतुष्टि होती है और यही ललित कलाओं का मूलाधार है।

कला व संस्कृति में आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध हैं। मनुष्य विकासशील है। वह संस्कृति व सभ्यता के द्वारा आगे बढ़ना चाहता है। कला के द्वारा संस्कृति का विकास होता है, इसलिए भी वह कला के प्रति उन्मुख होता है।

अभिरूचि का विकसित रूप एक अर्जित गुण है। यहां शारीरिक कुशलता भी आती है और कला में जो परिष्कृतता आती है वह शिक्षा के बाद आती है। अभिजात संगीत का रसास्वादन करने के लिए शिक्षित सुसंस्कृत श्रोता की आवश्यकता होती है।

यह कथन सही है कि जनसाधारण में शास्त्रीय संगीत के प्रति रूचि का अभाव होता है। किंतु अभिरूचि अर्जित भी हो सकती है क्योंकि स्वर के जादू का आनन्द हर व्यक्ति ले सकता है, यह अवश्य है कि शास्त्रीय संगीत के मर्म को समझने के लिए, पूर्व संस्कार, शिक्षा, वातावरण आदि की आवश्यकता होती है। समृद्ध, प्रबुद्ध और प्रभावशाली व्यक्ति व गुणी जन शास्त्रीय संगीत के प्रति लोक रूचि उत्पन्न करके संगीत को नई दिशा देने का प्रयत्न करें ताकि संगीत के उन्नयन के साथ–साथ राष्ट्रोन्नयन भी हो सके।

शास्त्रीय संगीत का सम्बन्ध सीधा आत्मा से है। इसलिए संगीत के प्रति रूचि भिन्न भिन्न स्तरों पर व्यक्त होती है। अतः व्यक्ति में अभिरूचि होना अति आवश्यक है और उसके लिए कुछ अर्जित गुणों की आवश्यकता भी होती है।

–00–

अध्याय – 6

योग एवं संगीत चिकित्सा द्वारा व्यक्तित्व निर्माण

'योग' युज् धातु से बना है। इसका अर्थ है 'जमा, मिलाना, जोड़ना'। दो वस्तुओं को मिलाना ही योग कहलाता है अर्थात् आत्मा से परमात्मा के मिलने को योग कहते हैं। प्राण को अपान से, शक्ति को शिव से, चन्द्र को सूर्य से मिलाना। जो विज्ञान हमें इन सबका ज्ञान कराता है वही योग विज्ञान कहलाता है।

भारत में कई विद्वानों ने योग की अति महत्वपूर्ण परिभाषाएं दी हैं जो इस प्रकार हैं।

शरीर तथा मन को एकाग्र करके परमात्मा से एक सुर होने को 'योग' नाम से जाना जाता है।

प्रसिद्ध विद्वान् महर्षि पतंजलि ने योगशास्त्र में लिखा है 'योगीश्चित्त वृत्ति निरोधः। साधारण शब्दों में, चित्त की वृत्ति के निरोध का नाम योग है अर्थात् योग चित्त की वृत्तियों को रोकता है, मन की स्थिरता को प्राप्त करना ही योग साधना या साध्य है।

श्री व्यास जी ने लिखा है, 'योग का अर्थ समाधि है।' रामायण महाभारत युग में भी इस शब्द का काफी प्रयोग हुआ है। इन पवित्र ग्रंथों में योग द्वारा मुक्ति प्राप्त करने के विषय में विस्तारपूर्वक लिखा हुआ है।

डॉ0 सम्पूर्णानन्द के अनुसार 'योग आध्यात्मिक कामधेनु है जिससे जो मांगो मिलता है।'

सभी मनुष्यों में मित्रता की भावना, दुःखी मनुष्यों में दया की भावना करने से चित्त के राग, द्वेष, घृणा, ईर्ष्या और क्रोध आदि मनोविकारों का नाश होकर चित्त शुद्ध, निर्मल हो जाता है।

योग द्वारा शरीर आरोग्य हो जाता है और मन की एकाग्रता बढ़ती है जिससे आत्मा तथा परमात्मा का मेल आसान हो जाता है और इस मधुर मेल का माध्यम शरीर होता है। स्वस्थ शरीर व स्वस्थ मन से ही उस सर्वशक्तिमान प्रभु के दर्शन हो सकते हैं और यदि व्यक्ति का मन स्वस्थ होगा तो व्यक्ति का व्यक्तित्व भी स्वस्थ एवं उच्चकोटि का होगा।

मनुष्य का लक्ष्य संसार में सारे सुखों को प्राप्त करते हुए अन्त इस जीवात्मा का परमात्मा के साथ एकीकरण करना है ताकि वह आवागमन के चक्कर से छुटकारा पाकर मुक्ति प्राप्त कर सके और इसके लिए मनुष्य में संगीत के साथ–साथ योग विज्ञान की शिक्षा कलाकार के व्यक्तित्व के निर्माण की प्रक्रिया को दोगुना कर देती है। यह कहना सही है कि संगीत व्यक्ति को परिष्कृत करता है किंतु संगीत के साथ–साथ व्यक्ति अपने जीवन में योग साधना का भी समन्वय करे तो यह तय है कि वह अन्य संगीत साधकों की अपेक्षा कम समय में ही अपनी कला के माध्यम से सम्पूर्ण विश्व को प्रभावित कर सकता है। क्योंकि योग द्वारा उसमें तीव्र ऊर्जा, सकारात्मक किरण–पुंजों का समावेश रहता है, जो स्वयं में एक दिव्याकर्षण है और साधक के संगीत को चरम उत्कर्ष की ओर ले जाता है।

अनन्तकाल से ही मानव शांति की खोज के लिए भटक रहा है परंतु मानव मन को शांति कब और कहां मिलती है, यह कह पाना बहुत कठिन

है। महर्षि पतंजलि, भगवान बुद्ध, आदि शंकराचार्य जैसे महान योगियों ने अपने–अपने ढंग से विभिन्न साधना पद्धतियों का आविष्कार किया।

उपनिषद् व गीता में शांति का आधार संगीत साधना को ही बताया है। संगीत साधना में इन्द्रियां समाहित होती हैं। मन ध्यानस्थ होने पर ब्रह्म से तादात्म्य स्थापित होता है। इसकी अनुभूति केवल संगीत साधना द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है।

मानव देह षड्चक्रों से निर्मित मानी गई है 'गुदा और लिंग के मध्य में चार दलों वाला आधार चक्र है।' नाभि चक्र से निकला हुआ नाद हृदय से होता हुआ मूर्धा को प्रभावित करते हुए मुख से बाहर निकलता है और इसी नाद की आराधना से संगीत साधक सिद्धि प्राप्त करता है। वाद्य वादक भी इसी नाद को अपने वादन में सृजित करते हैं।

संगीत साधना भी एक प्रकार की योग साधना है। इस साधना से अहंकारी, मूढ़, आलसी, श्वास रोगी और चंचल व्यक्ति भी संगीत साधना हेतु अपने आपको तैयार कर सकता है। योग साधना अत्यंत कठिन है। कोई बिरला व्यक्ति ही योग साधना में सफल हो पाता है। योगीजन अपार कष्ट उठाकर अनेक कठिन साधनाओं के उपरांत अनाहत नाद की सिद्धि प्राप्त करते हैं।

पं0 ओंकार नाथ ठाकुर के अनुसार 'योगियों और महर्षियों ने उसे निर्गुण ब्रह्मा का रूप कहा है परात्पर ब्रह्मा की अनुभूति प्रणव की साधना अथवा नाद से सिद्ध होती है।'

डॉ0 ओजेश प्रताप सिंह जी के अनुसार "कभी–कभी संगीत अभ्यास में लीन होने के बाद कलाकार जीवन के यथार्थ को भूल कर योगी की ही

भांति संगीत साधक भी अपने हृदय की गहराई में डूबकर चिंतन करता है वह स्थिति कलाकार के लिये 'समाधि' जैसी होती है।"

स्वर साधना के माध्यम से कलाकार आत्म साक्षात्कार करता है और चैतन्य लहरियों के माध्यम से राग व स्वर को सुनने के उपरांत स्वर साधना करता है क्योंकि उस समय कलाकार की बुद्धि निष्क्रिय होती है और चैतन्य लहरियां ही स्वर में लीन होने का साधन होती हैं।

संगीत साधना एक उच्च कोटि की साधना है इसके लिए शारीरिक बल और मानसिक स्फूर्ति दोनों को ही आवश्यक माना गया है अर्थात् संगीत साधना के साथ–साथ जब तक योग साधना रूपी तप नहीं किया जाएगा तब तक कलाकार स्वस्थ गायन की कल्पना से भी कोसों दूर होगा।

योग साधना व संगीत साधना में अत्यंत साम्य दृष्टिगोचर होता है। गायक व कलाकार के लिये योगाभ्यास, ध्यान व प्राणायाम किस प्रकार लाभकारी हो सकता है इस पर हम थोड़ा प्रकाश डालने की कोशिश कर रहे हैं।

कभी कभी देखा जाता है कि गायक का एक ही अवस्था में बैठने के उपरांत शरीर बहुत दर्द करने लगता है। अभ्यास के समय या मंच पर बहुत से गायक अथवा वादक एक अवस्था में बहुत देर तक नहीं बैठ पाते हैं। यह उनकी शारीरिक दुर्बलता को दर्शाता है। इसलिये कलाकार को प्रातःकाल में नियमित अधिक से अधिक पैंतालीस मिनट और कम से कम पन्द्रह मिनट योगाभ्यास अवश्य करना चाहिए।

गले में टॉन्सिल जैसे विकार को सिंहासन द्वारा एकदम ठीक किया जा सकता है। कभी कभी गायक का गला अधिक अभ्यास से पक जाता है उसके लिये भी सिंहासन और सर्वांगासन लाभकारी सिद्ध हुए हैं।

योगाभ्यास प्राणायाम द्वारा गायक (कलाकार) विशेष लाभ प्राप्त कर सकते हैं :

- आवाज मधुर बनाने के लियें, हलासन, सर्वांगआसन, सिंहासन, कपालभांति, जलनेति, भ्रामरी, शीतली और उज्जायी प्राणायाम व ग्रीवा शक्ति विकासक गले के सभी विकारों को समूल नष्ट कर आवाज को मीठा व मधुर बनाते हैं।

- हलासन, सर्वांगआसन, शीर्षासन, चक्रासन, पश्चिमोत्तानासन, नाड़ी–शोधन प्राणायाम से स्नायु निर्बलता से मुक्ति पाई जा सकती है।

- सूर्य नमस्कार, सुप्त वज्रासन, पीछे झुकने वाले आसन क्षय रोग से मुक्ति दिलाते हैं।

- सर्वांगआसन, मत्यासन, शवासन, भुजंगासन, शरूप्रक्षालन, अस्त्रिका, कपाल भांति सम्पूर्ण श्वास रोगों से मुक्ति दिला देते हैं।

- धनुरासन, त्रिकोणासन, उष्ट्रासन, शशांकासन कमर दर्द दूर करके रीढ़ की हड्डी को बल देते हैं।

- घुटने संबंधी रोगों के लिये – जंघा शक्ति विकासक जानु–शक्ति विकासक तेल मालिश से घुटने का दर्द बिल्कुल गायब हो जाता है।

यदि कलाकार शरीर के इन विकारों को योगाभ्यास से दूर करने का प्रयास करे तो वह अपने संगीत प्रदर्शन को और अधिक प्रभावोत्पादक तथा आकर्षित बना सकता है।

संगीत चिकित्सा पद्धति

मानव ने ईश्वर प्राप्ति और मनोरंजन इत्यादि के अतिरिक्त संगीत का प्रयोग चिकित्सा में भी किया है। वनस्पतियों, पशु पक्षियों और मनुष्य पर इसके विभिन्न प्रयोग किये जा रहे हैं। इस क्षेत्र में अनेकों सफल प्रयास संगीत चिकित्सा क्षेत्र में सफलता के सूचक हैं।

पं0 ओंकार नाथ ठाकुर जी के अनुसार 'सर जे.पी. बोस जिन्होंने वनस्पति शास्त्र पर अनुसंधान करके आधुनिक युग को यह प्रमाणित कर दिखाया था कि वनस्पति में भी जीव है। उनकी प्रयोगशाला में हमने 'भैरवी' गाई थी। गाने के पूर्व यंत्र द्वारा पौधों की अवस्था को देखा और गाने के बाद उन पौधों की पत्तियों पर आयी नई चमक का दर्शन भी किया था।'

भारत में ही मध्य प्रदेश का एक व्यक्ति अपनी भैसों के तबेले में उन्हें प्रतिदिन बीन की धुन 'कैसेट' के माध्यम से सुनाता है और उसने अपने एक साक्षात्कार में बताया कि "बीन की धुन से प्रभावित होकर उसकी भैंसें प्रतिदिन दो से ढाई लीटर दूध अधिक देती हैं।"

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी के बीमार होने पर उनकी चिकित्सा संगीत के माध्यम से महान संगीतज्ञ 'मनहर बर्वे' ने की थी जिसका उन्हें प्रमाण पत्र भी मिला था और गांधी जी ने भी इस शक्ति को स्वीकारा।

मम्मन खाँ साहब लिखते हैं कि 'जब मेरे शरीर में कोई व्याधि हो जाती थी तो वह राग द्वारा नष्ट हो जाती थी।' उदर संबंधी व्याधि के लिये नाद की तान, जो पेट से ली जाती थी, छाती की व्याधि के लिये 'गमक' की तान जिसका उद्भव छाती है। मस्तिष्क की व्याधि (नजला, जुकाम) जो मुंह बंद करके भ्रामरी प्राणायाम के माध्यम से नासिका द्वारा ली जाती है।

पाश्चात्य देशों में भी संगीत चिकित्सा पर व्यापक परीक्षण किये जा रहे हैं। अमेरिका में दंत चिकित्सक दांत उखाड़ते समय विद्युत वाद्य यंत्रों का प्रयोग करते हैं। इनमें से ऐसी तरंगें निकलती हैं इससे रोगी को दर्द का पता ही नहीं चलता।

श्वास नियंत्रण पर ही संगीत का आधार रहता है। यह भी एक प्रकार का योगाभ्यास है। लय सुरों के अनुपात में श्वासोच्छ्वास होते रहने से पाचन शक्ति बढ़ती है, जठर शुद्ध रहता है, नींद अच्छी आती है, मन एवं शरीर जागृत होता है, नेत्रों की ज्योति बढ़ती है।

आज 'एलोपेथी' के समर्थक भी संगीत चिकित्सा को स्वीकारते हैं और कहते हैं कि तन व मन को स्वस्थ रखने के लिए सबसे अच्छी चिकित्सा होती है।

संगीत वात, कफ और पित्त तीनों में संतुलन पैदा कर व्यक्ति को सदैव स्वस्थ रखता है।

संगीत साधना से श्वास नियंत्रित होती है, विभिन्न अंगों में प्रतिक्रिया होती है रक्त संचार बढ़ता है। विलम्बित लय के गायन से श्वास लम्बी होती है और प्राणायाम से फेफड़े के समस्त रोग दूर होते हैं। कौन–कौन से राग किन किन व्याधियों में लाभकारी सिद्ध होते हैं, इस प्रकार से देखिए :

	रोग		अनुकूल राग
1.	दमा	1.	बागेश्वरी
2.	साइनससाइटस	2.	दरबारी कान्हडा
3.	अनिद्रा रोग	3.	पूरिया, बागेश्री
4.	मलेरिया, टी.बी., हिस्टीरिया	4.	हिंडोल, मारवा, रामकली, मुलतानी

5.	कफ	5.	भैरव
6.	याददाश्त	6.	शिवरंजन
7.	मिर्गी	7.	भैरवी, बिहाग, घानी
8.	नेत्र	8.	भीमपलासी, मुलतानी, पटदीप
9.	सिरदर्द	9.	सोहनी, तोड़ी, भैरवी
10.	शारीरिक स्फूर्ति	10.	मल्हार, सौरठ, जैजैवंती
11.	पागलपन	11.	बहार, बागेश्वरी

अंत में हम कह सकते हैं कि सम्पूर्ण विश्व संगीत चिकित्सा में आस्था एवं विश्वास करता प्रकट प्रतीत होता है। आवश्यकता है तो मात्र सरकार द्वारा इसके और प्रोत्साहन की तथा बेहतर प्रयासों द्वारा इसे जन–साधारण तक पहुँचाने की।

–00–

अध्याय – 7

संगीत द्वारा व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास

संगीत कला के सदुपयोग से मानव व्यक्तित्व का निर्माण होता है और उसके दुरुपयोग से व्यक्ति का विनाश हो जाता है। आज व्यक्ति का व्यक्ति से अलगाव है। व्यक्ति मात्र अपने निज स्वार्थ हेतु आगे बढ़ने की भेड़चाल में शामिल हो गया है। ऐसे में संवेदनाओं और मनोभावों द्वारा केवल संगीत ही व्यक्ति को व्यक्ति से जोड़ सकता है।

सच्चे कलाकार के सामने संसार की बड़ी–बड़ी विभूतियां भी नतमस्तक हो जाती हैं। कलाकार सदैव सभ्य संगीत प्रेमियों से घिरा रहता है वह जहां भी जाता है उसे पूर्ण सम्मान प्राप्त होता है। इस प्रकार संगीतज्ञ के व्यक्तित्व का क्रमिक विकास होता है। संगीत में समाज को व व्यक्ति को प्रभावित करने की अद्भुत शक्ति होती है।

डॉ0 गीता पैन्टल जी ने एक स्थान पर "गुरूनानक देव जी द्वारा सज्जण नामक ठग का संगीत द्वारा हृदय परिवर्तन" का उल्लेख किया है जो इस प्रकार है –

"धर्म प्रचार करने के लिये गुरूनानक देव जी प्रायः यात्राएं किया करते थे। एक बार उन्हें किसी सराय में रुकना पड़ा जो आबादी से दूर स्थान पर थी। इस सराय को सज्जण नामक ठग चलाया करता था। यात्रियों का विश्वास अर्जित करने के लिए उसने अपनी सराय में मंदिर और मस्जिद दोनों ही बना रखे थे। यात्री उसे आस्थावान व्यक्ति समझकर उसकी सराय में ठहरते थे। किंतु रात्रि में वह

यात्रियों की हत्या कर उनका धन हड़प कर जाता था। गुरूनानक देव जी की हत्या करने जब वह सराय में उनकी ओर बढ़ा उस समय गुरू जी भाई मरदाना के साथ 'सूही' नामक राग में कीर्तन करने में तल्लीन थे। ईश्वर आराधना और भक्तिभाव से ओतप्रोत शब्द के मधुर संगीत को सुनकर उस पापात्मा का हृदय परिवर्तन हो गया और उसके हाथ से कटार छूट गई और वह गुरूनानक जी के चरणों में गिर कर क्षमायाचना करने लगा। इस घटना से ही प्रमाणित होता है कि संगीत में मानव मन को प्रभावित करने की कितनी अद्भुत शक्ति होती है।

सूफी इनायत खाँ के अनुसार धार्मिक व्यक्तियों के व्यक्तित्व का आकर्षण उनके सम्पूर्ण अस्तित्व में संगीत से प्रभावित होने के कारण है, संगीत में अद्भुत क्षमता होती है। यह शत्रु को भी मित्र बना लेती है और यह क्षमता समस्त प्राणियों में ईश्वर प्रदत्त गुण कहा जाता है।

मानव जीवन के विकास और संस्कृति के विकास के लिये अमलदास शर्मा कहते हैं 'संगीत द्वारा भारतीय संस्कृति की सेवा कर उसे उन्नत बनाने के उद्देश्य से प्रेरित होकर समृद्ध, प्रबुद्ध और प्रभावशाली व्यक्ति व गुणी जन संगीत के प्रति लोक रूचि उत्पन्न करके संगीत को नई दिशा देने का प्रयत्न करें ताकि संगीत की उन्नति के साथ–साथ राष्ट्र की भी उन्नति हो सके।

स्व0 एस.एन. राजान्जनकर संगीत कला के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं 'प्रापंचिक चिंताओं से थोड़े समय के लिए छुटकारा प्राप्त करने का यही एक साधन मनुष्य के पास है जो कि सेवा में सदैव तत्पर रहता है, कोई चिंताग्रस्त व्यक्ति चिंताओं से विश्राम पाने के लिए सुरापान भी करते हैं। यदि संगीत के शुद्ध सात्विक आनन्द के प्रभाव से चित्त को शांति एवं स्थैर्य प्राप्त हो तो सुरापान जैसे निकृष्ट उपाय की क्या

आवश्यकता है ?' इस प्रकार प्रस्तुत दृष्टांत जीवन में चिंता मुक्ति के लिए शराब के स्थान पर संगीत का प्रयोग किया जाना डा0 राजान्जकर स्वीकारते हैं।

संगीत कला का मानवीय गुणों की वृद्धि में अमूल्य योगदान प्रतीत होता है। प्रसिद्ध संगीतज्ञ 'पं0 भीमसेन जोशी' संगीत को राष्ट्रीय एकता स्थापित करने में महत्वपूर्ण उपादान के रूप में देखते हैं। भारतीय दूरदर्शन पर राष्ट्रीय एकता से संबंधित गीत 'मिले सुर मेरा तुम्हारा' के गायक पं0 भीमसेन जोशी जी अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं 'भिन्नता के इस वातावरण में अभिन्नता का सुर भरने के लिये हमारी सरकार ने संगीत जैसी सर्वजननी भाषा के माध्यम से इस गीत के प्रसारण का कार्यक्रम बनाया है क्योंकि संगीत ही अब एक ऐसा सशक्त और सार्वभौमिक साधन बचता है जो लोगों को एक सूत्र में पिरो सके और मानव को मानव के प्रति प्यार की भावना पैदा कर सके।

डॉ0 महेश नारायण सक्सेना संगीत के संबंध में विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं 'संगीत एक उच्च स्तरीय कला है, जो संस्कृति का एक प्रमुख अंग है। राष्ट्रीय चेतना की प्रतिष्ठा में उसका निसंदेह महत्त्वपूर्ण योगदान है। विश्व भाषा होने के नाते संगीत राष्ट्र की भावात्मक एकता की स्थापना में तो महत्वपूर्ण भूमिका निभाता ही है तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी वह विश्व शांति परिवार की भावना का प्रबल पोषक तत्व है।

संगीत के महत्व को प्रतिपादित करते हुए डॉ0 सरयू कालेकर कहती हैं 'जहां मानव सुमधुर ध्वनि गति से युक्त है वहीं जीवन है और जहां आदर्श जीवन है वहीं आदर्श व्यक्तित्व का उत्थान होता है।'

मेरे पूज्य गुरू जी डॉ0 हरीश तिवारी जी संगीत और व्यक्तित्व के विषय में कहते हैं कि 'व्यक्तित्वविहीन कलाकार का संगीत प्रदर्शन

प्रभावोत्पादक तथा आकर्षक नहीं होता क्योंकि उसकी आत्मा प्रत्यक्ष रूप से रसिक से नहीं जुड़ती है।'

डॉ0 शैलेन्द्र गोस्वामी जी संगीत और व्यक्ति के विषय में अपने विचार कुछ इस तरह रखते हैं 'संगीत में सात स्वरों के अतिरिक्त एक अन्य स्वर भी होता है और वह स्वर आत्मा (अध्यात्म) का स्वर होता है।'

उनका मानना है कि बदलते हुए परिवेश में व्यक्ति अपने लक्ष्य से दिग्भ्रमित हो गया है, दिशाहीन हो गया है, उन सभी व्यक्तियों को संगीत शास्त्रों के कठिन नियम में न बांधते हुए उन पर कठिन अनुशासन न थोपते हुए सरलता व सहजता से उनके साथ मित्रवत् सम्बन्ध स्थापित करके सामंजस्य बैठाते हुए उन्हें संगीत सागर की असीम गहराई का अनुभव कराना है और उनके व्यक्तित्व को परिष्कृत करना है।

सुप्रसिद्ध पखावज वादक पं0 डालचन्द शर्मा जी का कथन है 'संगीत हमें भद्रता की शिक्षा देता है अभद्रता का इसमें कोई स्थान नहीं।' वह बताते हैं कि एक बार एक शिष्य ने अपने गुरू से पूछा कि 'गुरू जी सच्चा स्वर कैसा होता है ? इस पर गुरू जी ने कहा कि 'यह अनुभूति का विषय है जिसे व्यक्ति अंतर्मन में महसूस करता है किंतु इस परमानुभव को शब्दों में नहीं उकेरा जा सकता। जिस तरह व्यक्ति का ईमान सच्चा होता है वैसे ही स्वरों के लगाव में भी सच्चाई होनी चाहिए, वह ही सच्चा स्वर कहलाता है।'

इस प्रकार संगीत के व्यक्तित्व पर प्रभाव की चर्चा विभिन्न विद्वानों ने अपने–अपने दृष्टिकोणों से की है। इन सभी विद्वानों से जो विचारधारा संगीत और व्यक्तित्व के संदर्भ में परिलक्षित होती है वह इस प्रकार है :

भौतिक जगत और यांत्रिक सभ्यता से ऊबा हुआ मानव एक बेहतर इकाई बनने के क्रम में संगीत का सहारा लेता है। संगीत उसके अंतस और बाह्य व्यक्तित्व के समस्त कलुष को धो डालता है – निर्मल बना देता है। संगीत व्यक्ति के मानसिक क्षितिज को एक अपरिमित विस्तार देता है। फलतः वह परिवार, समाज व राष्ट्र उन्नयन में सक्रियतापूर्वक सहभागी बनता है। चाहे वह प्रशासक, चिकित्सक, सर्जक, शिक्षक या श्रमिक हो, संगीत प्रदत्त संवेदनशीलता उसे प्रेरित करती है कि वह अर्जुन की तरह सिर्फ अपने लक्ष्य को देखें और सफलता प्रदान करें।

जो संगीत इतनी शक्ति दे, विशिष्टता दे, उसकी आराधना क्या बिल्कुल आसान है ? नहीं, कतिपय नहीं, संगीत से अंतरंगता स्थापित करना एक कष्ट साध्य तपस्या है। आत्मानुशासन की कठिन डगर है। संगीत साधना के लिये हमें अपने जीवन को बुराइयों से बचाकर रखना होता है, सुदृढ़ चरित्र रखना होता है तथा आत्मा के दिव्य प्रकाश को जीवन में उतारना होता है। छल, छद्म, व्यभिचार, लोभ, कुत्सित आचरण से दूर रहकर ही ऐसा संभव है।

इस तरह जब व्यक्ति संगीत के माध्यम से परिष्कृत हो जाता है तो वह सृजन के उस पथ पर चल पड़ता है जहां अमूर्त को मूर्त बनाना, अव्यक्त को व्यक्त करना, विन्यास रहित को विन्यस्त करने का कार्य होता है और अंततः महानता को प्राप्त होता है। महान अनुभूति से उत्पन्न प्रभाव को हम उदात्त कहते हैं, यही कलात्मक सत्य है और जीवन का सत्य भी।

संगीत साधक की अन्तःचेतना ब्रह्माण्ड के नाना सूक्ष्म स्थूल तत्वों का मानव साक्षात्कार करती रहती है और वह अपनी सौन्दर्यानुभूति को जब अपनी कलाकृति द्वारा प्रस्तुत करता है तो 'ब्रह्म' के रूप और गुण की झांकी हमें सहज ही मिल जाती है।

संगीत साधक का यथार्थ उसकी अनुभूति का जगत है जिसे वह प्रेम और सहानुभूति से प्राप्त करता है – उसका यह प्रेम विश्व के अणु–अणु को स्पंदित–आलोड़ित करता है। संगीत की साधना से साधक का मन विशाल और कोमल हो जाता है। हृदय की सरलता उसकी सृजनशीलता को समृद्ध करती है। इस प्रकार वह संस्कृति के उच्चतर धरातल पर जा बैठता है। जहां से वह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की अपेक्षा में रहता है और विश्व नागरिक की भांति सोचता–रचता है।

संगीत में वह शक्ति है जो बृहत्तर लोक कल्याण के लिये नूतन मन, नूतन मानव और नूतन परिवेश की रचना कर सकता है। आज असंख्य संगीत साधक इसी ध्येय प्राप्ति के लिये निरंतर प्रयासरत हैं।

—00—

उपसंहार

प्रस्तुत शोध के सार रूप में अथवा निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि समस्त गुणों से युक्त होने पर भी मानव के व्यक्तित्व में एक अति महत्वपूर्ण 'गुण' की आवश्यकता होती है और वह है 'संगीत'। चूंकि प्रकृति नियमों में बंधी है और संगीत भी शास्त्रबद्ध है। अतः जिस व्यक्ति के व्यक्तित्व के साथ यह दिव्य–गुण संश्लेषित हो जाता है वह प्रगति पथ पर निरंतर बढ़ता हुआ शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक रूप से सर्वांगीण विकास के साथ जीवन के लक्ष्यों को सहजता से प्राप्त करता है।

शोध के प्रथम अध्याय में व्यक्तित्व की परिभाषा को विभिन्न विद्वानों द्वरा परिभाषित किया गया है। संगीत के जन्म, वैदिक काल में संगीत की दशा, रामायण, महाभारत काल में संगीत के व्यक्तित्व पर होने वाले प्रभावों का भी उल्लेख किया गया है।

द्वितीय अध्याय में, सुगम व अभिजात (शास्त्रीय) संगीत की तुलना के साथ–साथ संस्थागत संगीत शिक्षण प्रणाली व गुरूकुलीय संगीत शिक्षण प्रणाली एवं वर्तमान में उसकी समस्याओं के निराकरण का वर्णन किया गया है।

तृतीय अध्याय में संगीत और मनोविज्ञान के परस्पर घनिष्ठ संबंधों का और व्यक्ति पर इसके होने वाले प्रभावों का भी सूक्ष्मता से वर्णन किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में सौन्दर्यानुभूति, भाव पक्ष, कला पक्ष के उचित संतुलन व सौन्दर्य की चेतना के आनन्द रूप अंश का तात्विक विवेचन एवं विश्लेषण किया गया है।

पंचम अध्याय में सांगीतिक प्रतिभाओं एवं अभिरूचि में स्वामी हरिदास जी एवं तानसेन की प्रतिभा का उल्लेख किया गया है। साथ ही सांगीतिक रूचि हेतु पूर्व संस्कारों, वातावरण आदि का भी विवेचन किया गया है।

षष्ठम अध्याय में योग द्वारा कला को उत्कृष्ट बनाना एवम् कलाकार के प्रस्तुतीकरण को और अधिक उच्चकोटि का बनाने की चर्चा की गई है। संगीत की शक्ति द्वारा चिकित्सा की संभावना को नकारा नहीं जा सकता। इसमें रागों के रस की परिकल्पना के आधार पर रोगों का निवारण आधुनिक संगीत चिकित्सा द्वारा किया जा सकता है। एलोपैथी व आयुर्वेद के समर्थक चिकित्सक भी संगीत चिकित्सा के महत्व को स्वीकारते हैं।

सप्तम अध्याय में शास्त्रीय संगीत द्वारा कलाकार के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के सर्वांगीण निर्माण प्रमाणिक तथ्यों द्वारा विवेचित किया गया है।

संगीत साधना चिर, तृषा को तृप्त करने का साधन है, परम–तत्व तक पहुँचने का सुगम मार्ग है और मानस व हृदय के उमगते आलोड़ को एक लय में बाँधने का सरलतम उपाय है। व्यक्तित्व विकास से बुद्धिजीवी, संस्कारित समाज का निर्माण होता है और संस्कारित समाज में ही राष्ट्र उन्नयन छिपा हुआ है।

–१०–

संदर्भ ग्रंथ सूची

1.	भारतीय संगीत शास्त्र	तुलसीराम देवांगन
2.	संगीत की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि	डा0 कविता चक्रवर्ती
3.	संगीत का योगदान मानव जीवन के विकास में	डा0 उमाशंकर शर्मा
4.	संगीत शिक्षण प्रणाली और उसका वर्तमान स्तर	डा0 मधुबाला सक्सेना
5.	संगीत की उच्चस्तरीय शिक्षण प्रणाली	डा0 पुष्पेन्द्र शर्मा
6.	संगीत का योगदान मानव जीवन के विकास में	डा0 उमाशंकर शर्मा
7.	संगीत विशारद	वसंत
8.	संगीत निबंध माला	पं0 जगदीश नारायण पाठक
9.	भारतीय संगीत की परम्परा	मंजरी जोशी
10.	संगीत दर्शन	विजय लक्ष्मी जैन
11.	शास्त्रीय संगीत शिक्षा : समस्याएं एवं समाधान	अलकनंदा पटनीकर
12.	संगीत शिक्षण एवं मनोविज्ञान	सविता उप्पल
13.	भारतीय संगीत एवं मनोविज्ञान	डा. (श्रीमती) वसुधा कुलकर्णी
14.	मनुष्य में देवत्व का उदय	श्रीराम शर्मा वाङ्गमय

—000—